मई–2022

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष–86 । अंक–5 । ₹–19 प्रति । ₹–220 वार्षिक

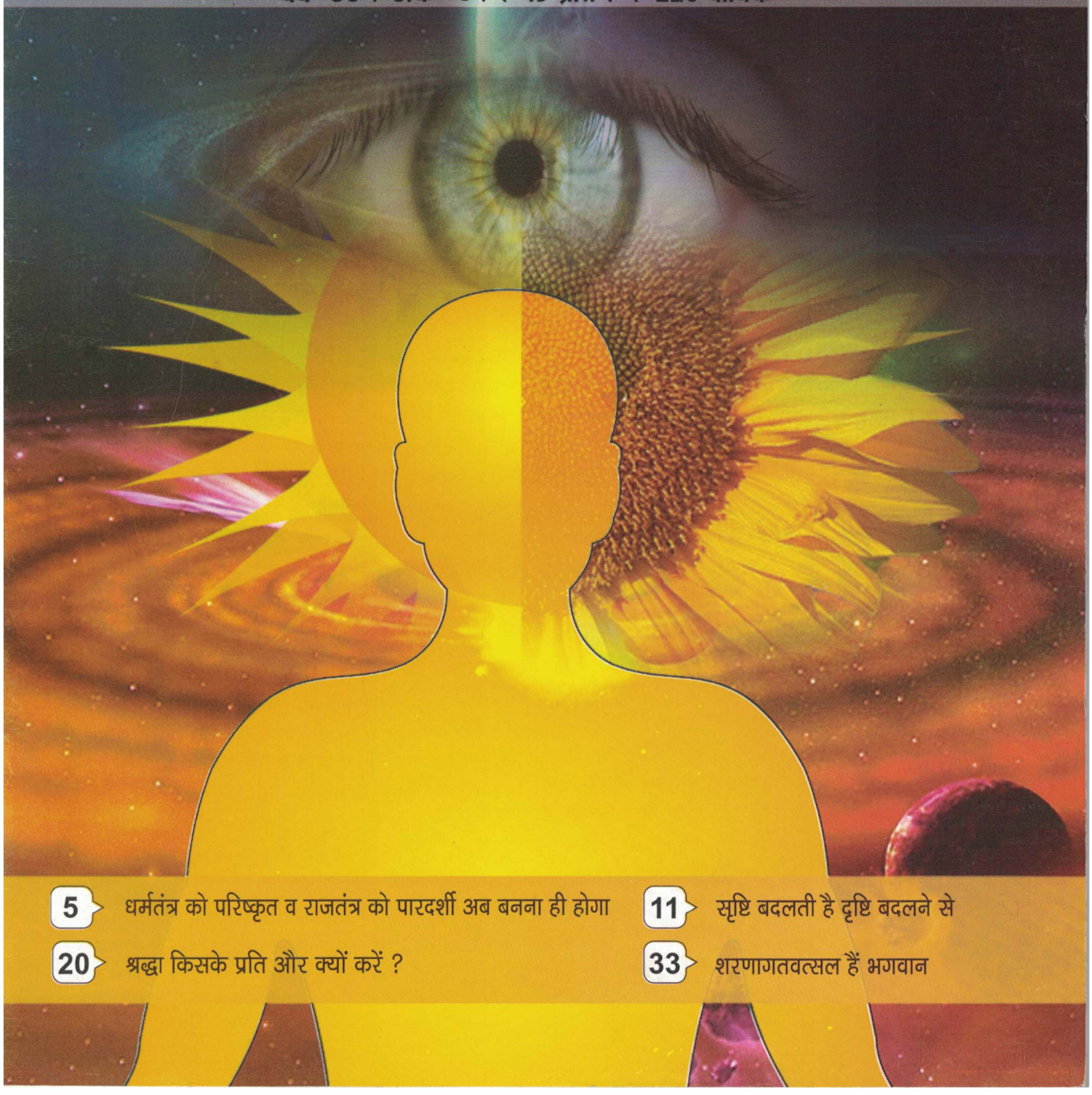

5 धर्मतंत्र को परिष्कृत व राजतंत्र को पारदर्शी अब बनना ही होगा

11 सृष्टि बदलती है दृष्टि बदलने से

20 श्रद्धा किसके प्रति और क्यों करें ?

33 शरणागतवत्सल हैं भगवान

अखण्ड ज्योति 75 वर्ष पूर्व

मई–1947

पृष्ठ संख्या - 10

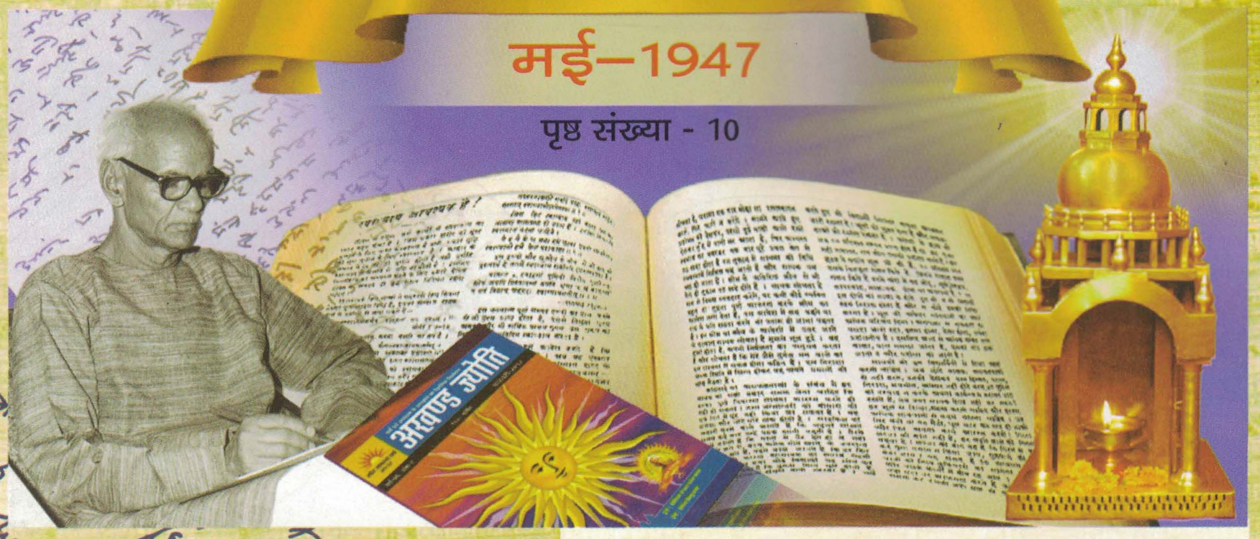

एक समय में एक काम !

"यह स्वर्णिम सिद्धांत हरेक को सदा याद रखना चाहिए कि एक समय में एक काम करेंगे। जब भोजन करना हो तो सारी चित्तवृत्तियों को एकत्रित करके सामने परोसे हुए भोजन के मधुर स्वाद का आस्वादन करते हुए उसके स्वास्थ्यप्रद गुणों का स्मरण करते हुए, प्रसन्नतापूर्वक उसे उदरस्थ करना चाहिए। जब बाल-बच्चों में खेलना हो तो सारी दिलचस्पी से उनकी मधुर बातें सुनो और अपनी कहो, जब हिसाब-किताब करने बैठो तो पूरे अर्थशास्त्री बन जाइए। जब भजन का समय आए तो संपूर्ण एकाग्रता उसी कार्य में होनी चाहिए। खेलते समय पक्के खिलाड़ी और भाषणकाल में प्रभावशाली वक्ता होना आवश्यक है और यह तभी हो सकता है, जब चित्त स्थिर हो, वह कूद-फाँद न सके। वक्ता किसी अच्छे विषय पर भाषण देते हैं, पर बीच-बीच में उनकी प्रवाह-शृंखला टूट जाती है। अभी एक बात की व्याख्या कर रहे थे, वह बात पूरी न हो पाई कि दूसरी बात चल पड़ी और फिर वह भी अधूरी रह गई। इस प्रकार अनेक अधूरी बातों से भरा हुआ भाषण एक बकवासमात्र रह जाता है। इस अधूरेपन के दोष के कारण कितने ही वक्ताओं की वक्तव्य शक्ति का, मानत्व नष्ट हो जाता है। यह दोष चित्त की अस्थिरता का प्रतीक है। बेचारा वक्ता मन को एक स्थान पर केंद्रीभूत रखने की कला से अनभिज्ञ होने के कारण मन के पीछे-पीछे इधर-उधर भागता फिरता है और अपना उपहास कराता है।"

– पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	:	86
अंक	:	05
मई	:	2022
वैशाख-ज्येष्ठ	:	2079
प्रकाशन तिथि	:	01.04.2022

वार्षिक चंदा

भारत में	:	220/-
विदेश में	:	1600/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में	:	5000/-

सृजन

भारतीय संस्कृति के समस्त सिद्धांत न केवल युगानुकूल हैं, बल्कि वे ऐसी श्रेष्ठ मान्यताओं पर आधारित हैं कि यदि उनका सम्यक पालन तथा अनुशीलन किया जा सके तो मनुष्य को देवमानवों की, महामानवों की श्रेणी में खड़ा कर पाना सहजता से संभव है।

ऐसा इसलिए; क्योंकि मनुष्य में देवत्व के उदय के उद्देश्य से स्थापित भारतीय संस्कृति के सिद्धांतों का निर्धारण पुरातन ऋषियों ने अपनी बहुमूल्य मानवीय कायारूपी प्रयोगशाला में सत्यापित करके किया। उसी आधार पर भारतीय जीवन दर्शन का निर्माण किया गया है और उसी का पालन करके भारतवासी प्रगति-पथ पर आगे बढ़ सके हैं।

भारतीय संस्कृति ने मनुष्य को परमात्मा का अंश मानते हुए शारीरिक कलुष, मानसिक भव-बंधनों से छूटकर उदात्त दृष्टिकोण की स्थापना एवं जीवनमुक्ति प्राप्त करना—मानवीय जीवन का परम लक्ष्य बताया है। इसीलिए यहाँ उत्कृष्ट चिंतन, उत्कृष्ट भावनाओं, उत्कृष्ट आचरण पर इतना ज्यादा बल दिया गया है। इतिहास गवाह है कि जब-जब इन मान्यताओं को झुठलाया गया, नकारा गया, तब-तब प्रतिकूलताओं ने हमें घेरा एवं हमें अंधकार भरे समय से गुजरना पड़ा।

भारतीय संस्कृति की जो शाश्वत परंपराएँ हैं—वे एक विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर चलाई गई हैं। इन सभी के साथ आदर्शवादिता एवं सुसंस्कारिता का जो शिक्षण जुड़ा हुआ है, वो हमें मानवीय संभावनाओं के शिखर पर पहुँचाता है। वर्तमान समय का यह एक महत्त्वपूर्ण दायित्व कहा जा सकता है कि हम इन्हीं प्राचीन एवं पुनीत परंपराओं की पुनर्स्थापना करें। ❐

विषय सूची

- आवरण—1 — 1
- आवरण—2 — 2
- सृजन — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  धर्मतंत्र को परिष्कृत व राजतंत्र को पारदर्शी अब बनना ही होगा — 5
- तप का प्रयोजन : आध्यात्मिक उत्कर्ष — 8
- सृष्टि बदलती है दृष्टि बदलने से — 11
- **पर्व विशेष (बुद्ध पूर्णिमा)**
  मानवीय चेतना के क्षितिज पर चमकते नक्षत्र—भगवान बुद्ध — 13
- कैसा हो आहार ? — 15
- गुरु की महिमा अपरंपार — 17
- श्रद्धा किसके प्रति और क्यों करें ? — 20
- अहं का आकार है अहंकार — 24
- व्यावहारिक जीवन में भगवद्भक्ति की अभिव्यक्ति — 26
- मानवीय गरिमा की कसौटी—विनम्रता — 28
- जिसकी जैसी श्रद्धा, वैसा उसका जीवन — 29
- कौन हैं परब्रह्म परमेश्वर ? — 31
- शरणागतवत्सल हैं भगवान — 33
- ऐतिहासिक घटनाक्रमों के प्रमाण हैं पुराण — 36
- भगवान महावीर के अमृत संदेश — 39
- **चेतना की शिखर यात्रा—236**
  जल-उपवास : प्रक्षालन प्रयोग — 40
- जलवायु-परिवर्तन का विकराल रूप — 43
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—157**
  हृदय रोगों की यौगिक चिकित्सा — 45
- प्रेम के रिश्ते में गाँठ न पड़ने दें — 47
- एकाग्रता की शक्ति को ऐसे बढ़ाएँ — 49
- **युगगीता—264**
  आसुरी वृत्ति वालों को न मिलता है सुख, न सिद्धि और न ही परमगति — 51
- भारतीय संस्कृति में धर्म का शाश्वत स्वरूप — 53
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  परिवार—एक पाठशाला — 56
- **विश्वविद्यालय परिसर से—203**
  पूज्य गुरुदेव की प्राण-चेतना से तरंगित विश्वविद्यालय — 62
- **अपनों से अपनी बात**
  मानवता के स्वर्णिम भविष्य का पथ — 64
- निष्कलंक प्रज्ञावतार (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

शिव का तृतीय नेत्र खुलने की तैयारी

मई-जून, 2022 के पर्व-त्योहार

सोमवार	02 मई	शिवाजी जयंती	सोमवार	30 मई	वट सावित्री व्रत/सोमवती अमावस्या
मंगलवार	03 मई	अक्षय तृतीया/परशुराम जयंती	गुरुवार	02 जून	महाराणा प्रताप जयंती
शनिवार	07 मई	सूर्य षष्ठी/टैगोर जयंती	रविवार	05 जून	सूर्य षष्ठी
रविवार	08 मई	गंगोत्पत्ति	शुक्रवार	10 जून	गायत्री जयंती/पूज्य गुरुदेव महाप्रयाण दिवस
गुरुवार	12 मई	मोहिनी एकादशी	शनिवार	11 जून	निर्जला एकादशी
शनिवार	14 मई	नृसिंह जयंती	मंगलवार	14 जून	कबीर जयंती/ज्येष्ठ पूर्णिमा
सोमवार	16 मई	बुद्ध पूर्णिमा	शुक्रवार	24 जून	योगिनी एकादशी
गुरुवार	26 मई	अपरा एकादशी			

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** *—संपादक*

▶ **'नारी सशक्तीकरण' वर्ष** ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

धर्मतंत्र को परिष्कृत व राजतंत्र को पारदर्शी अब बनना ही होगा

सामाजिक व्यवस्था के दो महत्त्वपूर्ण अंग कहे जा सकते हैं, एक का नाम है व्यक्ति और दूसरे का नाम है समाज। समाज सही दिशा में चले, उसकी उन्नति हो, प्रगति हो, उसमें आपराधिक वृत्तियाँ न पनपें, अर्थव्यवस्था एवं प्रशासन सुदृढ़ चलते रहें, सुरक्षा चाक-चौबंद रहे, सभी नागरिक सुखी एवं संतुष्ट रहें—यह सुनिश्चित करने का कार्य राजतंत्र का कहा जा सकता है।

व्यक्ति सही दिशा में चले, उसका जीवन न्याय, नीति, सदाचार से व सद्वृत्तियों से युक्त हो, उसके व्यक्तित्व में सद्भावनाओं, सद्गुणों एवं सत्कर्मों का वास हो—ये जिम्मेदारी धर्मतंत्र की मानी जा सकती है। दूसरे शब्दों में कहें तो व्यक्ति के व्यक्तित्व को निखारने की जिम्मेदारी धर्म की, आस्था की, अध्यात्म की है; जबकि सामाजिक विकास की जिम्मेदारी सरकार की, प्रशासन की, राजनीतिक नेतृत्व की है।

वर्तमान में लोग इस समीकरण को भूल-से गए प्रतीत होते हैं, इसलिए आज की परिस्थितियों में इनकी समीक्षा कर लेना आवश्यक हो जाता है। भारतीय चिंतन में इन दोनों क्षेत्रों के अलग-अलग प्रभाव-क्षेत्र का वर्णन बरसों पहले ही कर दिया गया था। हमारे यहाँ इस सत्य को स्पष्ट कर दिया गया था कि भौतिक क्षेत्र, बाह्य क्षेत्र राजनीति का है व आत्मिक क्षेत्र, आंतरिक विकास का क्षेत्र, धर्मतंत्र का है। इस दृष्टि से देखा जाए तो न तो ये दोनों एकदूसरे के विरोधी हैं और न ही इनका कार्य, एकदूसरे के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप करना है।

वस्तुत: इन दोनों का उद्देश्य एकदूसरे के पूरक के रूप में वैयक्तिक विकास से लेकर सामुदायिक विकास को सुनिश्चित करना है। इतिहास गवाह है कि जब तक ये दोनों एकदूसरे के पूरक रहे, तब तक भारतीय संस्कृति उन्नति की सीढ़ियों पर चढ़ती ही चली गई। उदाहरण के रूप में चंद्रगुप्त को यदि धर्मतंत्र के पुरोधा चाणक्य का मार्गदर्शन न मिला होता तो क्या एक अखंड, अपराजित साम्राज्य स्थापित कर पाना उनके लिए संभव हो पाता?

छत्रपति शिवाजी को यदि गुरु रूप में समर्थ गुरु का सहकार, सहयोग एवं संरक्षण न मिला होता तो क्या उनके लिए इतनी सारी शौर्य की गाथाएँ लिख पाना संभव हो पाता? उधर स्वामी समर्थ ने गाँव-गाँव जाकर माँ भवानी के मंदिरों की, हनुमान जी के मंदिरों की स्थापना की, जनता के हृदय में राष्ट्रभक्ति की भावना का संचार किया तो वहीं शिवाजी को सेना एकत्रित करने, युद्ध-कौशल विकसित करने की प्रेरणा भी दी।

स्वयं भगवान राम को बला-अतिबला, ब्रह्मास्त्र इत्यादि की शिक्षा क्या ब्रह्मर्षियों ने नहीं दी थी? इसीलिए जब-जब धर्मतंत्र को राजतंत्र के सहयोग की आवश्यकता हुई, तब-तब उन्होंने उनके सहयोग को साक्षात् पाया। ऋषियों की अस्थियों को देखकर भगवान राम ने धरती को निशाचरविहीन करने की प्रतिज्ञा ली तो वहीं विक्रमादित्य ने गुरु पर आघात करने वाले के प्राण लेने में संकोच न किया।

इसी प्रकार जब-जब राजतंत्र अपने पथ से भटकता दिखा तो धर्मतंत्र ने समय पर पहुँचकर उसको दिशा दिखाई, उसका मार्गदर्शन किया। किला बनवाते समय शिवाजी के मन में अहंकार पनपा तो समर्थ गुरु ने चट्टान के भीतर से जीवित मेंढ़क को निकालकर उनको परोक्ष रूप से सीख दे दी कि सबका पालनहार तो परमात्मा ही है। बुल्लेशाह के गुरु ने उनको बताया कि जैसे गुदड़ी में ऊँट का मिलना मुश्किल है, वैसे ही महल में खुदा का। भर्तृहरि के गुरु ने कमल की पंखड़ियों में जाकर मर गए भौंरे को दिखाकर उनको यह भान कराया कि राजपद पर बैठने वालों का कामांध होकर भटकना उनके स्वयं से लेकर समाज व राष्ट्र, सभी के पतन का कारण बनता है।

ये दोनों तंत्र जब तक एकदूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते रहे, तब तक भारत की भूमि पर रंतिदेव, दिलीप, रघु, विक्रमादित्य जैसे राजा जन्म लेते रहे, जिनकी उपस्थिति से यह धरती स्वयं को सौभाग्यशाली मानती रही और वे महापुरुष विश्व को भी कल्याण का पथ अनवरत दिखाते रहे।

दुर्भाग्य यह है कि आज ऐसा होता नहीं दिखता; क्योंकि ये दोनों ही तंत्र अपनी-अपनी जिम्मेदारियों को भूलकर दूसरों के क्षेत्र में अनधिकार चेष्टा करते नजर आते हैं। परिणाम स्पष्ट है—धर्मतंत्र, धर्मनिष्ठ व्यक्तित्वों से रहित नजर आता है तो वहीं राजतंत्र, प्रजावत्सल प्रशासकों के अभाव को प्रदर्शित करता दिखाई पड़ता है। एक गाड़ी में दोनों ओर पहिए लगते हैं। बायाँ वाला उस दिशा में एवं दायाँ वाला उस दिशा में भागने लगे तो गाड़ी का चेसिस टूट जाएगा और टक्कर हो जाएगी।

आदमी की दोनों आँखें अलग-अलग दिशाओं में देखने लगें तो आदमी को ढंग से दिखना बंद हो जाएगा। जिसके लिए जो पथ दिया गया है, यदि वो उसका सही से पालन न करे तो समस्या का जन्म लेना अनिवार्य हो जाता है। यदि हम भारत का इतिहास उठाकर देखें तो हम पाएँगे कि यहाँ वर्षों तक सामाजिक विकास और वैयक्तिक उत्कर्ष, समाज की उन्नति, प्रगति और व्यक्ति का उत्थान व विकास साथ-साथ होते रहे, ये दोनों धाराएँ साथ-साथ बहती रहीं; क्योंकि धर्मतंत्र ने, ऋषियों ने उनको प्रदत्त भूमिका का निर्वहन किया तो राजतंत्र ने उसको प्रदत्त भूमिका का।

जब ऋषिकुमार कौत्स राजा रघु को सब कुछ दान देने के बाद भी उनसे धन माँगने आए तो राजा रघु ने वो उनको देने के लिए और अपने वचन की रक्षा के लिए देवलोक पर चढ़ाई करने से संकोच न किया। नंदिनी गाय के प्राणों की रक्षा के लिए राजा दिलीप स्वयं को समर्पित करने को तत्पर नजर आए।

भगवान राम, अजातशत्रु, विक्रमादित्य, भोजराज से लेकर महाराजा मांधाता एवं हरिश्चंद्र तक अनेकों ऐसे राजा भारत के इतिहास में मिल जाते हैं, जिनके हृदय आस्था से ओत-प्रोत थे, जिनका जीवन धर्म की प्रतिमूर्ति था तथा जिन्होंने अपने कर्त्तव्य का पालन पूर्ण ईमानदारी के साथ किया था। क्यों? क्योंकि उनकी जिम्मेदारी स्पष्ट थी और एकदूसरे के कार्य में उनका कोई हस्तक्षेप न था।

यह स्पष्ट अवधारणा ही भारत के सर्वांगीण विकास का आधार बन सकी थी। इसके पीछे कारण एक था—धर्मतंत्र और राजतंत्र का एकदूसरे के पूरक के रूप में कार्य करना तथा एकदूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप न करना। न तो तब धर्मगुरु राजनीति करते थे और न तब प्रशासक—धर्म के क्षेत्र की मर्यादा का उल्लंघन करते थे।

छत्रपति शिवाजी राज्य सँभालते थे तो अजातशत्रु भगवान बुद्ध का आशीर्वाद प्राप्त करते थे। यदि धर्म को कार्य को करने में रुकावटें आती थीं तो उनको दूर करने के लिए राजतंत्र खड़ा होता था और यदि राजा, राजपद की गरिमा को भूलता दिखाई पड़ता था तो उस पर नियंत्रण—अनुशासन स्थापित करने का काम धर्मतंत्र करता था। पौराणिक आख्यान इस तथ्य की स्पष्ट गवाही देते हैं कि जब ऋषियों के यज्ञ-कर्मकांड को करने में राक्षसों ने रुकावटें डालनी आरंभ कीं तो वहाँ तत्कालीन सूर्यवंश, चंद्रवंश, रघुकुल और इक्ष्वाकु कुल के राजा उपस्थित हुए।

जब चंद्रगुप्त बहकते दिखे तो चाणक्य ने आकर उनको सही दिशा दिखाई। आज दु:खद बात यह है कि दोनों ही क्षेत्र—दिशा, व्यक्तित्व एवं नेतृत्व के अभाव से पीड़ित नजर आते हैं। सत्य यही है कि यदि इस राष्ट्र को फिर से गौरव के शिखर पर आरूढ़ होना है तो हमें धर्मतंत्र को परिष्कृत और राजतंत्र को पारदर्शी बनाना होगा।

धर्मतंत्र यदि जाग जाए तो देश, राष्ट्र, समाज, मानवता सभी की दिशा नियंत्रित एवं निर्धारित हो जाती है। भगवान बुद्ध के ढाई लाख शिष्यों ने भारत से लेकर जापान के राजतंत्र को मथ डाला था। धर्मतंत्र के जागरण से हत्यारे भिक्षु बन जाते हैं, गणिकाएँ—भिक्षुणी बन जाती हैं और आक्रांता—अजातशत्रु बन जाते हैं। धर्मतंत्र के जागरण का कार्य उनके द्वारा संभव नहीं, जिनके लिए धर्म एक जीविका का, आमदनी का स्रोत है। धर्मतंत्र के जागरण से अर्थ उस तरह के व्यक्तित्वों के प्राकट्य से है जो मानवता, दया, करुणा आदि का प्रतीक बनकर समाज के आगे मशाल की तरह से खड़े हो जाते हैं।

यदि वैसे लोग आज खड़े होने लग जाएँ तो इस भटके समाज को कल ही ठिकाने पर लाया जा सकता है। धर्मतंत्र का कार्य ऋषियों के संस्कृति के, अध्यात्म के संदेश को जन-जन तक पहुँचाना है और उनमें मानवता के मूल्यों का, सद्गुणों का विकास करना है। धर्मतंत्र का ऐसा जागरण ही राजतंत्र की दिशा निर्धारित कर सकता है और आज समय, उसी जागरण की माँग करता नजर आता है। शांतिकुंज की स्थापना के पीछे का उद्देश्य ही परमपूज्य गुरुदेव ने धर्मतंत्र के जागरण का केंद्र रखा था, अत: शांतिकुंज अपने इन आधारभूत सिद्धांतों का निर्वहन आज भी करता नजर आता है।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा स्थापित गायत्री तीर्थ शांतिकुंज ने प्राचीनकाल के गुरुकुलों की तरह से आवश्यकता पड़ने पर सदा राजतंत्र को सही दिशा दिखाई और आगे भी दिखाता रहेगा। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसे ही सामयिक सोच कहा जा सकता है और इसे ही सदा सामयिक रहना होगा। ❑

एक तांत्रिक ने आकाश से स्वर्ण-वर्षा कराने की सिद्धि प्राप्त कर ली और अपने परमप्रिय शिष्य को वह विद्या सिखा दी। वर्ष में जब संयोगवश वह नक्षत्र उदय होता, तभी वह प्रयोग सफल हो सकता था। एक दिन दोनों कहीं यात्रा पर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें चोरों ने घेर लिया। तांत्रिक को उन चोरों ने इस शर्त पर छोड़ दिया कि कहीं से वह हजार मुद्रा ले आए, तब ही उसके साथी को छोड़ा जाएगा। गुरु ने शिष्य के कान में धीरे से कहा— "जल्दी ही स्वर्ण-वर्षा का नक्षत्र आने वाला है सो मैं समुचित मात्रा में मुद्राएँ लेकर आ जाऊँगा, पर ध्यान रहे कि तुम इस विद्या का प्रयोग जल्दबाजी में न कर बैठना, नहीं तो जान से भी हाथ धो बैठोगे।" दूसरे ही दिन उस नक्षत्र का उदय हुआ। इस सुयोग को देखकर युवक अपने प्राणों की रक्षा में धैर्य और विश्वास खो बैठा और अपने गुरु की बातों को नजरअंदाज कर उसने चोरों से स्वर्ण-वर्षा के रहस्य को साझा कर डाला। स्वर्ण-वर्षा की बात सुनकर लालची चोर उससे सहमत हो गए और उन्होंने युवक की बात को एक बार आजमाने की दृष्टि से उसे मुक्त कर दिया। युवक ने स्वर्ण-वर्षा के मंत्र का प्रयोग किया और अगले ही क्षण स्वर्ण बरसने लगा। सारे स्वर्ण को लेकर चोर चल दिए।

रास्ते में उन चोरों का एक और बड़े दुर्दांत दल से सामना हुआ। उन्होंने अपने विपक्षी के पास बड़ी मात्रा में सोना देखा तो उन्होंने उनसे इसका पता पूछा। डरपोक चोरों ने स्वर्ण-वर्षा से संबंधित सब बात चोरों के बड़े गिरोह को बता दी, जिसे सुनकर उन्होंने उस युवक को तत्काल खोजना आरंभ कर दिया। युवक जब तक चोरों की पकड़ में आया, तब तक स्वर्ण-वर्षा का वह नक्षत्र निकल चुका था और युवक के लाख प्रयास किए जाने पर भी अब स्वर्ण-वर्षा न हो सकी। परिणामस्वरूप दुराव करने वाला कहकर उस युवक को उन्होंने मार डाला। अब बचे हुए स्वर्ण के लोभ से बँटवारे का प्रश्न उठा, जिससे चोरों के दोनों दलों में विद्रोह भड़क उठा व आपस में लड़ाई होने लगी। अंत में दोनों दलों में से एक-एक आदमी ही शेष बच पाया, बाकी सभी मारे गए। दिन निकल आने के कारण उन दोनों चोरों ने निश्चय किया कि वे दिन में विश्राम कर लेंगे व रात को आगे की यात्रा आरंभ करेंगे। बात आपस में तय हुई। दोनों अलग हो एक-एक गाँव से भोजन और शराब लेने गए और लौटते हुए दोनों अपने-अपने सामान में जहर मिला लाए। खाने-पीने के उपरांत दोनों मर गए। बूढ़ा तांत्रिक किसी प्रकार हजार मुद्राएँ लेकर जब वापस लौटा तो देखा कि सभी मरे पड़े हैं। भय से आक्रांत हो, वह उस धन को छोड़कर खाली हाथ भागा कि मुफ्त का धन कहीं इन्हीं लोगों की तरह मेरे भी प्राणहरण न कर ले।

अहंताजन्य वित्तैषणा से जो दुर्गति उन सभी की हुई, उसे समझदार मनुष्य भली भाँति समझते हैं व परिश्रम की कमाई को ही महत्त्व देते हैं।

तप का प्रयोजन : आध्यात्मिक उत्कर्ष

तप की महिमा अपरंपार है। श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी, तप की महिमा के बारे में बालकांड में कहते हैं—

तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥
तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता।
तपबल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं संघारा।
तपबल सेषु धरइ महिभारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाइ तपु अस जियँ जानी॥

अर्थात तप सुख देने वाला और दुःख-दोष का नाश करने वाला है। तप के बल से ही ब्रह्मा संसार को रचते हैं और तप के बल से ही विष्णु सारे जगत् का पालन करते हैं, तप के बल से ही शंभु संहार करते हैं और तप के बल से ही शेष जी पृथ्वी का भार धारण करते हैं। हे भवानी! सारी सृष्टि तप के ही आधार पर है, ऐसा जी में जानकर तू जाकर तप कर।

तप के बारे में महर्षि पतंजलि ने अपने योगदर्शन के साधनपाद के पहले सूत्र में कहा है—

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः॥

(पा.यो.सू. 2/1)

अर्थात तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान यानी ईश्वरशरणागति—ये तीनों क्रियायोग हैं। क्रियायोग समाधि के लिए पहला प्रायोगिक आधार है, जो तप, स्वाध्याय व ईश्वरप्रणिधान के संयुक्त क्रम से ही घटित होता है। तप स्वाध्याय व ईश्वरशरणागति के बिना अधूरा व अपूर्ण होता है और इनके बिना अपने शुभ फल को प्रकट नहीं करता।

स्वाध्याय व ईश्वरशरणागति के बिना किया जाने वाला तप अज्ञान, आसक्ति व अहंकार को उत्पन्न करता है, जो कि व्यक्ति के विनाश का ही कारण होता है; जबकि स्वाध्याय व ईश्वरशरणागति के साथ किया जाने वाला तप सद्ज्ञान, सद्विवेक व वैराग्य को उत्पन्न करता है, जो उसे परमतत्त्व से जोड़ता है।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार—'तप आध्यात्मिक जीवनशैली का दूसरा नाम है। जो तपस्वी होता है, वह अपना संपूर्ण जीवन ईश्वर की साक्षी में जीता है। वह ऐसा कुछ भी नहीं करता और ऐसा कुछ भी नहीं सोचता, जिसे अपने आराध्य की उपस्थिति में न किया जा सके। जो लोग केवल भूखे रहने को या फिर पानी अथवा धूप में खड़े रहने को तप का पर्याय मान लेते हैं, वे भ्रमित हैं। तप तो सहज संयम है। वासना, तृष्णा एवं अहंता से पीछा छुड़ाकर प्रभु की ओर बढ़ चलने का नाम है। इस डगर पर जो शारीरिक एवं मानसिक पीड़ाएँ होती हैं, तपस्वी उन्हें सहज भाव से सहन करता है।'

तप का अर्थ परिष्कार है, अहंकार का पोषण करना नहीं है। तप का उद्देश्य अहंकार का संवर्द्धन नहीं, बल्कि उसका विसर्जन है। तप करने के उपरांत जिनमें अहंकार बढ़ता है, उनका तप करना सफल नहीं होता, बल्कि उनके ही विनाश का कारण बनता है। उदाहरण के लिए—रावण, कुंभकरण, विभीषण ने कठिन तप किया और ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया, उनसे वरदान पाया। रावण और कुंभकरण दोनों में अहंकार था, एक में सक्रिय व जाग्रत रूप में और दूसरे में सुप्त रूप। तो वहीं विभीषण में अहंकार की जगह विनम्रता थी।

इन तीनों ने ही ब्रह्मदेव से वरदान पाया था और जिसके उपरांत रावण का अहंकार इतना बढ़ गया कि उसने जगत् में उत्पात मचाना शुरू किया। कुंभकरण वरदान के अनुसार दीर्घ काल की निद्रा में लीन हो गया और विभीषण वरदान के अनुसार प्रभुभक्ति में लीन हो गए। समय बीतने पर जब भगवान राम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ, तब एक दिन अहंकारी रावण ने अपने छल-बल से भगवान राम की भार्या माता सीता का हरण कर लिया। इसके बाद जब राम-रावण युद्ध हुआ, तो उसमें रावण, कुंभकरण समेत सब मारे गए और भक्त विभीषण को भगवान की कृपा मिली और अंत में वे लंका के राजा भी बन गए।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि—**मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्** अर्थात शास्त्रविधि को न मानकर

घोर तप करने वाले तमोगुणी व्यक्ति, शरीर में स्थित मुझ अंतर्यामी को भी कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को आसुरी स्वभाव वाला जान। असुरराज हिरण्यकशिपु ने भी वरदान पाने हेतु कठोर तप किया था। ऐसा तप, जिसमें उसका शरीर सूख गया था, लेकिन तप के पूर्ण होने पर उसने अमरता का वरदान माँगा, जब ब्रह्मदेव ने शरीर के नश्वर होने की बात कही, तब उसने ऐसा वरदान माँगा, ताकि कोई उसे मार न सके।

उसने माँगा कि उसकी मृत्यु न दिन में हो न रात में; न घर में हो और न घर से बाहर; न जल में हो, न थल में; उसे न कोई देव मार सके, न असुर; न जानवर, न मानव; उसे न कोई अस्त्र से मार सके और न कोई शस्त्र से। ब्रह्मदेव ने उसे उसकी इच्छानुसार वरदान दे दिया और वरदान पाने के उपरांत वह स्वयं को अमर समझने लगा और स्वयं को ही भगवान मान बैठा। अपने राज्य में वह अपनी ही पूजा करवाता था। उसके राज्य में कोई भी भगवान के लिए यज्ञ व पूजा नहीं कर सकता था।

नियतिवश उसी के पुत्र 'प्रह्लाद' भगवान के सच्चे भक्त निकले और प्रह्लाद ने किसी भी अवस्था में भगवान की भक्ति नहीं छोड़ी। हिरण्यकशिपु ने अपने अहंकार में प्रह्लाद को मार डालने के अनेकों प्रयत्न किए, लेकिन वह उसे मार न सका; क्योंकि प्रह्लाद की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान नारायण ने उसकी हर समय रक्षा की थी। प्रह्लाद को मार डालने के सभी प्रयत्न एक तरह से प्रह्लाद की भक्ति की परीक्षा ही थी, जिसमें वे लगातार उत्तीर्ण हो रहे थे।

भक्त प्रह्लाद की भक्ति-परीक्षा की इन्हीं कड़ियों में से एक कड़ी में प्रह्लाद के अनुरोध पर भगवान स्वयं नृसिंह रूप में खंभे से प्रकट हो गए और उन्होंने संध्याकाल में हिरण्यकशिपु को घर की दहलीज पर बैठकर अपनी जाँघों पर रखकर अपने नाखूनों से मार डाला। नृसिंह रूप में भगवान न तो कोई देव थे और न ही मनुष्य, न ही असुर और न कोई जानवर। उन्होंने हिरण्यकशिपु को न तो दिन में मारा और न ही रात्रि में, उन्होंने हिरण्यकशिपु को न तो किसी अस्त्र से मारा और न ही किसी शस्त्र से, उसे न तो जल में मारा और न ही थल में और उसे न तो घर के अंदर मारा और न घर से बाहर।

इस तरह हिरण्यकशिपु का वरदान भी खंडित नहीं हुआ और उसकी मृत्यु भी हो गई। रावण के पुत्र मेघनाद ने भी अमरता का वरदान पाने हेतु कठिन तप कर ब्रह्मदेव को प्रसन्न किया था, लेकिन जब ब्रह्मदेव ने अमरता के वरदान के अलावा कोई और वर माँगने के लिए कहा तो उसने यही कहा कि उसे कोई ऐसा व्यक्ति ही मार सके, जिसने 14 वर्षों तक अन्न-जल न ग्रहण किया हो, 14 वर्षों तक जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया हो और अपनी स्त्री से दूर रहा हो और जो 14 वर्षों तक सोया न हो।

ऐसा कठिन वरदान पाकर मेघनाद ने यही समझा कि ऐसे व्यक्ति का धरती पर आना असंभव है, इसलिए उसकी मृत्यु भी असंभव है, लेकिन जब भगवान राम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ तो लक्ष्मण भी उनके साथ रहकर उनकी सेवा करने के लिए वन गए। वन में रहकर लक्ष्मण प्राणपण से भगवान राम एवं माता सीता की सेवा में लग गए। इन चौदह वर्षों में कभी भी लक्ष्मण जी ने शयन नहीं किया, अन्न-जल ग्रहण नहीं किया और पूरी तरह से ब्रह्मचर्य का पालन किया।

वे केवल प्राणवायु ग्रहण कर तपस्या करते थे और इसी तपस्या के कारण लक्ष्मण मेघनाद जैसे महापराक्रमी असुर को मारने में सफल हुए। इस तरह जितने भी असुर, दैत्य व राक्षसों के कठिन तप के उदाहरण हैं, वे सभी अपने कठोर तप के बदले माँगे जाने वाले वरदान में यही माँगते हैं कि वे किसी तरह से अमर हो जाएँ और वरदान माँगने के उपरांत उनमें अहंकार व दंभ इतना बढ़ जाता है कि दूसरों पर अत्याचार कर व उन्हें सताकर वे अपने ही पुण्य एवं तप का नाश कर जाते हैं।

पुण्य व तप का नाश ही व्यक्ति को अवसान की ओर, मृत्यु की ओर ले जाता है। असुर इसी गति को प्राप्त होते हैं। जितने भी कठिन तप करने वाले सात्त्विक भक्त हुए हैं, वे सभी अपने वरदान में भगवान को ही माँगते हैं। सद्भक्त भगवान की भक्ति व उनकी शरणागति को ही माँगते हैं और वरदान माँगने के उपरांत भगवान की भक्ति करके पुण्य व तप का ही अर्जन करते हैं और मृत्यु के समय सद्गति को प्राप्त होते हैं, जबकि कठिन तप करने वाले जो सांसारिक व्यक्ति हुए हैं, वे तो अपने कठिन तप के बदले सांसारिक कामनाओं की पूर्ति ही माँगते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के 17वें अध्याय के 14वें, 15वें व 16वें श्लोक में शरीर, वाणी व मन के तप

का वर्णन किया है, लेकिन इस तप में उन्होंने शरीर को कष्ट देने की बात नहीं कही है, बल्कि इसमें बड़ी शांति के आचरण के साथ तप के व्यवहार का वर्णन किया है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

(गीता-17/14)

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

(गीता-17/15)

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

(गीता-17/16)

अर्थात देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानी जनों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—ये शरीर संबंधी तप कहे जाते हैं॥ 14॥

जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रों के पठन का एवं परमेश्वर के नाम जप का अभ्यास है—वही वाणी संबंधी तप कहा जाता है॥ 15॥

मन की प्रसन्नता, शांतभाव, भगवच्चिंतन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अंतःकरण के भावों की भली भाँति पवित्रता—इस प्रकार यह मन-संबंधी तप कहा जाता है॥ 16॥

भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कहे गए तप के इन सूत्रों में तप की बड़ी सरल व सूक्ष्म बातें हैं, जिन्हें सहजता से जीवन में अपनाया जा सकता है और अपने जीवन को तपोमय बनाकर उसे परिष्कृत कर पुण्य-अर्जन किया जा सकता है।

वास्तव में तप एक ऐसी जीवनशैली का नाम है, जिसे अपनाकर हम सभी न केवल अपने जीवन को, अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत कर सकते हैं, वरन इसके माध्यम से हम नीरोग जीवन जीते हुए आध्यात्मिक उन्नति भी कर सकते हैं और जीवन के परम लक्ष्य की ओर तीव्रता से उन्मुख हो सकते हैं।

तप के माध्यम से जो पुण्य-अर्जन होता है, उससे प्रायः लोग अपनी सांसारिक मनोकामनाएँ ही पूरी किया करते हैं। इसे ऐसा भी कह सकते हैं कि प्रायः लोग अपनी मनोकामनाओं को पूरा करने के लिए तप करते हैं, किंतु यदि कोई व्यक्ति निष्काम होकर तप करता है तो उसका तप ही उसे आध्यात्मिक उत्कर्ष की ओर ले जाता है। ❑

राजा दिलीप संतान की प्राप्ति का उपाय पूछने धर्मपत्नी समेत गुरु वसिष्ठ के आश्रम जा पहुँचे। उपाय सुझाते गुरु वसिष्ठ ने कहा—"राजन्! आप दोनों यहाँ प्राकृतिक वातावरण में रहिए, दुग्धकल्प कीजिए और गौ चराने के निमित्त उसके पीछे-पीछे दिनभर भ्रमण कीजिए।" राजा-रानी पूर्ण निष्ठा के साथ संलग्न हुए। एक दिन मायावी सिंह ने दिलीप की गुरुभक्ति को परखना चाहा और गाय के ऊपर आक्रमण कर दिया। गाय के प्राणों की रक्षा में राजा का धनुष-बाण काम न दे रहा था। उन्होंने सिंह से प्रार्थना के स्वर में कहा—"भले ही आप मुझे खा लें, किंतु कृपा कर इस गाय को छोड़ दें। गुरुदेव द्वारा कल्याणार्थ सौंपी गाय को गँवाकर मैं स्वयं उन्हें क्या मुँह दिखाऊँगा?" राजा की भक्ति-भावना और उत्तरदायित्व की दृढ़ता की परीक्षा कर लेने के उपरांत सिंह ने गाय को छोड़ दिया और स्वयं राजा को भी कोई नुकसान नहीं पहुँचाया। समयानुसार उन्हें तप-साधना एवं कर्त्तव्यनिष्ठा के फलस्वरूप श्रेष्ठ संतान प्राप्त हुई, जिसने रघुकुल की परंपरा को आगे बढ़ाया।

सृष्टि बदलती है दृष्टि बदलने से

मंगलपुर गाँव में रहने वाले लोग अभावों से भरा हुआ दुःखी जीवन जी रहे थे और इसके लिए गाँव के लोग कभी भगवान को कोसते तो कभी अपने भाग्य को। अपने भाग्य को सौभाग्य में बदलने और भगवान को प्रसन्न करने हेतु गाँव के लोगों ने अनेकों प्रकार के टोने-टोटके किए, पीर-फकीरों के वेश में आए लोगों के द्वारा दिए गए भभूत और ताबीज आदि भी पहने और कुछ अन्य प्रयोग भी किए, पर इससे भी उनके जीवन पर कोई असर न पड़ा।

वे अभावों में ही जीवन काटते रहे और इसके लिए फिर से भगवान को कोसने लगे, अपने भाग्य को कोसने लगे। दैवयोग से उस गाँव में हिमालय के दिव्य क्षेत्र से एक ब्रह्मज्ञानी योगी पधारे। वे लोक-कल्याण की इच्छा से सूर्योदय से पूर्व ही भ्रमण करते हुए उस गाँव में पहुँचे थे। गाँव की गलियों से गुजरते हुए कभी वे अलख-निरंजन तो कभी नारायण हरि कहते हुए गाँव के लोगों में जाग्रति व चेतना का संचार करने को उन्होंने पूरे गाँव का परिभ्रमण किया।

इस प्रकार अब सुबह के 7.30 बज चुके थे, पर अब तक गाँव में सन्नाटा ही पसरा था; क्योंकि गाँव के लोगों में सुबह देर तक सोने की आदत बनी हुई थी। संत प्रवर को यह देखकर बड़ा अचरज हुआ। वे गाँव के ही एक खाली मैदान में जाकर बैठ गए। उन्होंने वहाँ बैठकर जोरदार शंखनाद किया। शंख की ध्वनि सुन गाँव के लोगों की निद्रा भंग हुई।

सभी नित्य क्रिया से निवृत्त होकर उस स्थल पर पहुँचे, जहाँ बाबा बैठे हुए अभी भी शंखनाद किए जा रहे थे। धीरे-धीरे गाँव के सभी लोग वहाँ एकत्र हुए। सबने संत प्रवर का परिचय प्राप्त किया। सभी उसी मैदान में बैठ गए। फिर संत प्रवर ने उनके बीच अपने आने का प्रयोजन बताया। उन्होंने बताया कि प्रभु की प्रेरणा से मैं लोक-कल्याण हेतु भ्रमण करता हुआ आप लोगों के बीच आया हूँ। मुझे यह देखकर बहुत हैरानी है कि इस गाँव के लोग इतने अभाव और दुःख में क्यों हैं?

तभी वहाँ बैठे जगतलाल जी बोल पड़े—"हाँ बाबा! आप का कहना बिलकुल सही है। इस गाँव में दुःख और दरिद्रता भरे पड़े हैं। हम सब बहुत अभावों में, कष्टों में जीवन जी रहे हैं।" तभी वहाँ बैठे जेठलाल जी खड़े हुए और कहने लगे—"बाबा! लगता है इस गाँव पर किसी की बुरी नजर लग गई है। हम सबों ने कई पीर-फकीरों के दिए हुए भस्म, भभूति, ताबीज और अन्य चीजें भी आजमा कर देखे, पर उसका कोई असर हुआ नहीं। अब आप आए हैं। यह हम सबों का सौभाग्य है। आप ही कोई आशीर्वाद दीजिए, जिससे कि इस गाँव के लोगों के जीवन में खुशियाँ लौट आएँ।"

संत प्रवर बोले—"देवियो और सज्जनो! मैं अपनी दिव्यदृष्टि से इस गाँव के अतीत को देख रहा हूँ, वैसे ही जैसे मैं अपने सामने आप सबों को देख रहा हूँ। इस गाँव का अतीत वैसा नहीं था, जैसा आज दिख रहा है। इस गाँव का अतीत बड़ा ही समृद्धशाली और वैभवशाली रहा है। इस गाँव के लोग कभी कठोर परिश्रम करने वाले और पुरुषार्थ करने वाले हुआ करते थे।"

अपलक किसी दिशा में देखते संत प्रवर कह रहे थे—"वे अपने परिश्रम और पुरुषार्थ से इस गाँव को समृद्धिशाली बनाए हुए थे। वे बड़ा ही संयम से भरा जीवन जीते थे। वे ब्राह्ममुहूर्त में उठकर भगवद्ध्यान, पूजा, उपासना के द्वारा अपने जीवन को पवित्र बनाने वाले और भगवद्भक्त हुआ करते थे।" वे आगे बोले—"वे अपनी भगवद्भक्ति व ध्यान के द्वारा अपनी आत्मज्योति प्रदीप्त कर प्रभु से दिव्य प्रेरणाएँ व आशीर्वाद प्राप्त करते थे।"

गहरा श्वास छोड़ते हुए उन्होंने आगे कहा—"हर घर में धर्म शास्त्र नित्य पढ़े जाते थे और लोग उनसे प्रेरणाएँ ग्रहण करते थे। वे योग-अभ्यास, व्यायाम आदि के द्वारा अपने तन-मन को स्वस्थ रखते थे। वे नशे से दूर रहने के कारण हमेशा स्वस्थ रहते थे। वे रासायनिक खेती के बजाय प्राकृतिक, जैविक खेती किया करते थे, जिससे जमीन की उर्वराशक्ति बनी रहती थी।"

संत प्रवर ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा—''खेतों में अच्छी उपज होती थी। अन्न पुष्ट होते थे, जिनके सेवन से लोग स्वस्थ रहते थे। बड़े पैमाने पर गोपालन की परंपरा थी। गौ का दुग्ध पीने से उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ी-चढ़ी रहती थी। वे सेहतमंद हुआ करते थे। प्राय: हर घर में शाम को पारिवारिक गोष्ठी हुआ करती थी। जिसमें कई पारिवारिक समस्याओं का समाधान होता था।''

संत आगे बोले—''गाँव में साप्ताहिक रूप से स्वच्छता अभियान चलाए जाते थे। जिससे गाँव की गलियाँ स्वच्छ व सुंदर हुआ करती थीं। साफ-सफाई रहने से रोगों के विषाणु गाँव में नहीं आ पाते थे। फलस्वरूप लोग कई रोगों से मुक्त रहा करते थे। गाँव के देवस्थल पर एकत्र होकर प्राय: सभी लोग सभी पर्व-त्योहार बड़े धूम-धाम से मनाते थे। इससे गाँव के लोगों में प्रेम और आपसी भाईचारा बना हुआ रहता था। गाँव के अधिक समृद्ध लोग प्राय: कम समृद्ध लोगों की दिल खोलकर सेवा-सहायता किया करते थे।''

अपनी बात का निष्कर्ष निकालते संत प्रवर ने कहा—''यह सब 60 वर्ष पूर्व घटते हुए मैंने अपनी दिव्यदृष्टि से देखा है और आज ये सारे गुण यहाँ से नदारद हैं। यहाँ आज जो स्थिति बनी है, उसका कारण यही है कि धीरे-धीरे गाँव के लोगों में बुरी आदतें पनपने लगीं। लोग सुबह ब्राह्ममुहूर्त में सूर्योदय से पूर्व उठने के बजाय देर से जागने की आदत के शिकार हुए।''

वे आगे कहने लगे—''प्राकृतिक आहार के बजाय लोग अप्राकृतिक आहार आदि लेने लगे। ब्राह्ममुहूर्त में व्याप्त प्राण-ऊर्जा के सेवन से वंचित होने लगे। भगवद्भजन, योग-व्यायाम से दूर होने लगे। मांस, मदिरा एवं अन्य विभिन्न प्रकार के नशे के शिकार होकर रोगी, आलसी, प्रमादी व अकर्मण्य होते चले गए। रासायनिक खेती करते रहने के कारण जमीन की उर्वराशक्ति समाप्त होती गई। फलस्वरूप फसल की उपज कम होती गई।

''परिवार में गोष्ठी व स्वाध्याय की आदतें कम हो गईं। गाँव में सामूहिक श्रमदान, सफाई-अभियान, वृक्षारोपण-अभियान आदि परंपराएँ मिटती चली गईं। गोपालन से लोग विमुख होते गए और फलस्वरूप गाँव की व गाँव में रहने वाले आप सभी लोगों की दशा-दिशा दयनीय होती चली गई। आप सब की इस विकट स्थिति के पीछे का यह भी एक कारण है।''

संत प्रवर ने कहा—''आप कहते हैं कि गाँव पर एवं आपके जीवन पर किसी की बुरी नजर लग गई है। आप सभी का भाग्य खराब हो गया है; आप सभी पर भगवान नाराज हो गए हैं, पर मैं आप सभी के परम कल्याण की भावना से यह कहता हूँ कि गाँव पर किन्हीं आसुरी शक्तियों की नजर नहीं लगी, बल्कि आप सभी के आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता, नशाखोरी व अप्राकृतिक जीवनशैली के कारण ही मंगलपुर गाँव का एवं आप सबका अमंगल हुआ है।''

उन्होंने गाँववालों को समझाया—''इस अमंगल को, अभाव को, दरिद्रता को किसी भस्म-भभूति, ताबीज आदि से दूर नहीं किया जा सकता। इसके द्वारा गाँव की खुशहाली एवं आपके जीवन की खुशहाली नहीं लौट सकती। इसके लिए तो आपको अपनी जीवन-दृष्टि बदलनी होगी। कठोर परिश्रम, पुरुषार्थ करना होगा। जीवन में भगवद्ध्यान, व्यायाम, स्वाध्याय आदि को शामिल करना होगा व वर्षों पूर्व की गाँव की स्वास्थ्य परंपराओं को फिर से सजीव करना होगा।''

लोक-कल्याण की परम भावना से कही गई संत प्रवर की मधुर वाणी का लोगों पर बड़ा व्यापक असर हुआ। प्राय: सभी लोग अपने जीवन को बदलने के प्रयास में प्राणपण से जुट गए। गाँव के लोग ब्राह्ममुहूर्त में उठने लगे व योजनाबद्ध रीति से अपनी दिनचर्या का क्रमश: पालन करने लगे।

योग-व्यायाम, भगवद्ध्यान, स्वाध्याय, पारिवारिक गोष्ठी, नशाखोरी का त्याग करने के अलावा अप्राकृतिक आहार की जगह अब लोग शाक-सब्जी, मौसमी फल, प्राकृतिक शाकाहार ग्रहण करने लगे। सामूहिक श्रमदान से गाँव की सफाई होने लगी, पौधारोपण होने लगे।

रासायनिक खेती के बजाय फिर से जैविक खेती, प्राकृतिक खेती होने लगी। गोपालन की परंपरा पुनर्जीवित हुई। गाँव में वाचनालय, देवालय की स्थापना हुई। लोग आलस्य-प्रमाद को त्यागकर कठोर परिश्रम करने लगे और इस प्रकार फिर से मंगलपुर का गौरवशाली अतीत वापस लौट आया।

गाँव के लोग अब पुन: सुखी व समृद्ध जीवन जीते हुए आनंदपूर्वक रहने लगे। ठीक ही कहा गया है कि व्यक्ति यदि अपनी जीवन-दृष्टि को बदल डाले तो वह प्रतिकूल प्रतीत होने वाली अपनी परिस्थितियों में भी आमूलचूल परिवर्तन कर सकता है। ❑

पर्व विशेष (बुद्ध पूर्णिमा)

मानवीय चेतना के क्षितिज पर चमकते नक्षत्र–भगवान बुद्ध

भगवान बुद्ध एक ईश्वरीय अवतार के रूप में धरती पर आए थे, जिन्होंने लुप्त हो रही मनुष्यता को नवजीवन का वरदान दिया। वे भारतीय अस्मिता और गौरव के प्रतीक थे, जिनकी देशना की छाँह में सदियों से आध्यात्मिक जीवनमूल्य पुष्पित-पल्लवित होते रहे। उनकी शिक्षाएँ कालजयी हैं। जब तक मानव का अस्तित्व है, तब तक उनकी शिक्षाएँ अमर रहेंगी। परमात्मा की सृष्टिरूपी झील में भगवान बुद्ध बोधज्ञान के एक ऐसे खिले हुए कमलपुष्प थे, जिसकी ज्ञानसुरभि में मानवता ने नए सोपान चढ़े। ध्यानमूर्ति भगवान बुद्ध प्रेम और करुणा के सागर थे, जिनकी उपस्थिति मात्र से सभी अनुगृहीत और आप्लावित हो जाते थे।

कपिलवस्तु के निकट लुंबिनी नामक स्थान पर शाक्य सम्राट शुद्धोधन और कोली वंश की राजकुमारी माया देवी के पुत्र सिद्धार्थ का पालन-पोषण सम्राट शुद्धोधन की दूसरी पत्नी और माया देवी की छोटी बहन रानी प्रज्ञावती ने किया था। उनके जन्म के समय तत्कालीन महान संत, तपस्वी असिता ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक 'या तो महानतम सम्राट बनेगा या अभूतपूर्व संन्यासी।' राजाओं की दृष्टि और रुचि अपने साम्राज्यों के विस्तार में ही रहा करती थी, अत: सम्राट शुद्धोधन की रुचि भी इसी ओर थी। एक तरफ उन्हें इस बात की खुशी थी कि उनका पुत्र उनके विशाल साम्राज्य का स्वामी बनेगा, लेकिन वहीं दूसरी ओर उन्हें स्वामी असिता के दूसरे वक्तव्य की भी चिंता होती थी, जिसमें उन्होंने राजकुमार सिद्धार्थ के संन्यासी हो पाने की संभावनाओं का भी जिक्र किया था।

स्वाभाविक रूप से बचपन में ही सिद्धार्थ के हृदय में जीवन और मृत्यु के मूल प्रश्नों पर चिंतन-मनन चलता रहता था। वे सोचते कि जब सब कुछ एक दिन मिट ही जाएगा तो इतना उपद्रव किसलिए? इसी मध्य उनके भीतर करुणा, मैत्री और प्रेम के बीजों ने अंकुरित होना प्रारंभ कर दिया था। वे विवेक-वैराग्य की बातें करते थे।

काल और नियति कब किसी के बाँधे बँधे हैं। राजकुमार सिद्धार्थ का विवाह राजकुमारी यशोधरा से करा दिया गया। सम्राट शुद्धोधन ने सिद्धार्थ के लिए वे सभी उपाय किए, जिससे कि सिद्धार्थ को संसार में बाँधा जा सके। इसका विशेष ध्यान रखा जाने लगा कि उन्हें सांसारिक जीवन में किसी भी तरह का कष्ट न हो। उन्हें सभी तरह की सुविधाएँ दी गईं। अनेकों तरह के आमोद-प्रमोद के साधन उनके जीवन में जुटा दिए गए। सम्राट के ये प्रयास उनके मनोरथ को पूर्ण करने में असफल रहे और उन्होंने सिद्धार्थ के मुक्तिपथ पर चलने के भाव को और दृढ़ ही किया। सिद्धार्थ इस सांसारिक चकाचौंध से ऊब गए और सत्य को सिद्ध करने को दृढ़प्रतिज्ञ हो गए।

जीवन में प्राप्त सभी साधन-सुविधाओं को छोड़कर, प्रिय परिवारीजनों को सोते हुए छोड़ वे जीवन के शाश्वत सत्य की खोज में अनजाने पथ की ओर निकल पड़े। वे अपने प्रिय अश्व कंतक और सेवक चन्ना के साथ अज्ञात पथ पर प्रशस्त हो गए। राज्य की सीमा पर जाकर उन्होंने सबका मन मोह लेने वाले अपने केशों को नदी में विसर्जित कर दिया। अपने राजसी वस्त्र, आभूषण सेवक को देकर उन्होंने उसे राजमहल लौटने के लिए कहा। एक साधारण-सा चीवर पहन वे सत्य के अन्वेषण के लिए आत्मप्रेरित पथ पर आगे बढ़ चले।

सत्य के अन्वेषण में उन्होंने सभी गुरुओं से प्राप्त ज्ञान को आत्मसात् किया। जीवनसत्य जिनके पास जो भी था और उसके अनुभव के लिए उन्होंने जितनी भी कठिन साधनाएँ बताईं, उन्होंने वे सब पूरी कीं। अनेकों कठिन अनुष्ठान उन्होंने संपन्न किए। महीनों तक दिन में एक चावल का दाना ग्रहणकर वे जीवित रहे। हठयोग की पराकाष्ठाओं को पार करने में उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया था। लगभग सात वर्ष के घोर तप, साधना और त्याग के बाद भी उन्हें जब परम सत्य का बोध नहीं मिला तो एक रोज वे यह संकल्प करके बैठे कि अब वे तभी उठेंगे, जब अस्तित्व के समस्त रहस्यों का उन्हें बोध न हो जाए।

सिद्धार्थ का संपूर्ण अस्तित्व उस परम अर्थ की खोज में आत्मलीन हो गया। तीन दिन, तीन रात बीत गए

और वह शुभ दिव्य घड़ी आ ही गई, जब उनके अस्तित्व ने परमात्मचेतना का दिव्य स्पर्श पा लिया। संपूर्ण प्रकृति ने उन पर अपने आशीष की वर्षा की। सिद्धार्थ ने संबोधि की अवस्था अर्जित कर ली थी। ईश्वरीय अंश का अपने स्रोत से साक्षात्कार हो चुका था। बिहार प्रांत के बोधगया में आज भी वह वृक्ष खड़ा है, जो इस दिव्य क्षण का साक्षी बना।

पास के गाँव की एक युवती सुजाता उस वृक्ष की पूजा के लिए आया करती थी और उन्हें भोजन दे जाया करती थी। आज जब वह वहाँ पहुँची तो सिद्धार्थ के चेहरे पर उस अलौकिक आभा को देखकर उसका मन श्रद्धा से भर गया और तब सुजाता ने ही उन्हें सर्वप्रथम 'बुद्ध' कहकर संबोधित किया था। सात वर्ष की साधना रंग लाई थी।

भगवान बुद्ध जरा-जीर्ण समाज को नवजीवन देने निकल पड़े। उन्होंने सारनाथ में अपने पूर्वपरिचित पाँच संन्यासियों को अपना पहला धार्मिक उपदेश दिया। हमारे समाज में इससे पूर्व पंचप्रथा चलन में नहीं थी। यहीं से 'पंच परंपरा' की नींव पड़ी यानी जिस सत्य के साक्षी पाँच लोग हैं, वह स्वीकार्य है।

साधनसंपन्न ऐश्वर्यसंपन्न, लेकिन जीवन में रिक्तता का अनुभव कर रहे बड़े-से-बड़े सम्राटों को बुद्धत्व का संस्पर्श मिला और उन्होंने उनके दिखाए श्रेष्ठ पथ पर चलने का निश्चय किया। राजगृह के सम्राट बिंबसार ने उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया। उन्होंने विशाल वेणुवन उन्हें दान किया था, जहाँ उस समय 10 हजार बौद्धभिक्षु एक साथ बैठकर ध्यान कर सकते थे। सम्राट सारिपुत्त भी उनके शिष्य हो गए थे।

उस समय के प्रसिद्ध सेठ सुदत्त (अनाथपिंडक) ने भगवान बुद्ध को कुछ देने की अपनी इच्छा व्यक्त की तो उन्होंने बौद्धभिक्षुओं के लिए एक विहार की बात की, जो भिक्षुओं के आत्मकल्याण में सहायक होता। यह विहार तत्कालीन सम्राट प्रसेनजित के बीसवर्षीय युवराज पुत्र जेत का था। राजकुमार जेत ने उसे देने से पहले मना कर दिया और अनाथपिंडक के अनुरोध पर उपहास करते हुए उसने उस उपवन को इसी शर्त पर देने की स्वीकृति दी कि यदि वे इस उपवन को पूरी तरह से स्वर्णमुद्राओं से पाट दें।

उसकी अपेक्षाओं के विपरीत उसे और बाकी सभी को आश्चर्यचकित करते हुए अनाथपिंडक ने उस शर्त को पूरा करते हुए उस सुंदर मनोरम उपवन को अपने आराध्य भगवान बुद्ध को समर्पित कर दिया और बुद्धत्व के प्रेम को पाकर अपना जीवन उन्होंने धन्य कर लिया।

भगवान बुद्ध दुनिया के पहले ऐसे गुरु थे, जिन्हें उनके उन मार्गदर्शकों ने गुरु रूप में स्वीकार किया, जिनसे कभी उन्होंने मार्गदर्शन प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। श्रावस्ती के उनके एक शिष्य अनिरुद्ध ने बुद्ध को नाम दिया—'तथागत' जिसका अभिप्राय है—जो अजर-अमर है, न कहीं जाता है और न ही कहीं से आता है।

ऐसी ही एक अनोखी घटना तब घटी, जब भगवान बुद्ध परिव्रज्या करते हुए वापस अपने राज्य लौटे। उनकी पत्नी यशोधरा ने कहा—"जो आपने घर से भागकर खोजा, क्या घर में नहीं मिल सकता था?" बुद्ध मुस्कराए और मौन रहे। जब उनकी पत्नी ने कहा—"अपने एकमात्र पुत्र को देने के लिए आपके पास क्या है?" तो बुद्ध बोले—"बुद्धत्व।" इतिहास गवाह है कि पिता द्वारा पुत्र को संन्यास की वसीयत दिए जाने की यह पहली घटना थी। अगले ही दिन राहुल अपने भगवान बुद्ध के समूह में आगे-आगे चल रहा था। 51 वर्ष की अवस्था में राहुल का देहावसान हो गया था। राहुल जीवनभर बौद्ध भिक्षु रहे और धर्म का प्रचार करते रहे।

भगवान बुद्ध ने स्त्रियों के लिए सबसे पहले संन्यास का दरवाजा खोला। नगरवधू आम्रपाली ने उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया और संन्यास की दीक्षा ली। बुद्ध के प्रभाव से विस्मित उनकी माता रानी प्रज्ञावती और उनके छह महीने बाद पत्नी यशोधरा ने भी संन्यास ले लिया था। उनके द्वारा दीक्षित स्त्री संन्यासियों की संख्या हजारों में थी। भिक्षुणी खेमा, प्रज्ञाधारा, धर्माधीना, उत्पलवर्णा और विशाखा के ज्ञान की गूँज चहुँओर थी।

भगवान बुद्ध ने पंचशील के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। ये सिद्धांत हैं—अहिंसा, चोरी न करना, वासना से मुक्ति, झूठ का परित्याग और व्यसनों से बचाव। भगवान बुद्ध ने अपने ही एक अनुचर कुंठा लुहार के यहाँ विषाक्त भोजन ग्रहण करने को शरीर छोड़ने का माध्यम बनाया। उनकी देहयात्रा की समाप्ति हो जाने के बाद भी चेतना के जगत् में आज भी वे देदीप्यमान नक्षत्र की तरह मौजूद हैं। ❑

कैसा हो आहार?

आहार से तात्पर्य ग्रहण किए जाने वाले भोजन से है और यह चार प्रकार का होता है—भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य। भक्ष्य यानी दाँतों से चबाकर खाए जाने वाले रोटी, भात आदि। भोज्य यानी निगलकर खाए जाने वाले रबड़ी, दूध, पानी आदि। लेह्य यानी चाटकर खाए जाने वाले शहद, चटनी आदि और चोष्य यानी चूसकर खाए जाने वाले गन्ना आदि पदार्थ।

इन चार प्रकार के आहारों में सात्त्विक प्रकृति के आहार ही सात्त्विक व्यक्तियों को प्रिय होते हैं। अगस्त्य संहिता में यह बताया गया है कि आहार दोष तीन तरह के होते हैं—

(1) जाति दोष

(2) आश्रय दोष

(3) निमित्त दोष

खाद्य पदार्थों में स्वाभाविक रूप से रहने वाला दोष 'जाति दोष' कहलाता है। जैसे—प्याज, लहसुन, मांस, मछली एवं अंडा आदि खाद्य पदार्थ जाति दोष के अंतर्गत आते हैं; क्योंकि इनमें तेज गंध होती है और ये तामसिक खाद्य पदार्थ भी कहलाते हैं।

आश्रय दोष वह है, जिसमें कोई खाद्य पदार्थ निकृष्ट व्यक्ति या स्थान का आश्रय प्राप्त कर लेता है तो उसके संपर्क के कारण उसमें आश्रय दोष आ जाता है। जैसे—कसाई की दुकान या शराबखाने में रखा हुआ पवित्र कहा जाने वाला दूध भी आश्रय दोष के कारण अपवित्र हो जाता है, लेकिन जब पवित्र स्थान में रखी हुई वस्तु भी अपवित्र जीव के संपर्क में आने से अपवित्र हो जाती है तो इसे निमित्त दोष कहते हैं। जैसे—मंदिर के प्रांगण में रखे हुए दूध को कुत्ता या बिल्ली पी जाए अथवा दूध में मक्खी या अन्य कीड़ा, मकोड़ा आदि गिर जाए तो वह अपवित्र हो जाता है। सात्त्विक आहार इन तीनों प्रकार के दोषों से रहित होता है। इसके अलावा बासी, जूठा, दुर्भावनायुक्त, दूषित स्थान पर रखा हुआ अथवा अपवित्र हाथों से छुआ हुआ भोजन भी अशुद्ध होता है।

व्रत-उपवास आदि सात्त्विक, धार्मिक प्रक्रियाओं में ऐसा भोजन वर्जित होता है। जो भोजन पवित्रतापूर्वक बनाया जाए और उसके बाद उसका श्रद्धापूर्वक देवी-देवताओं को भोग लगाया जाए तो ऐसा भोजन शुद्ध व सात्त्विक होता है। इसके अलावा चोरी, ठगी, विश्वासघात एवं अन्यायपूर्वक अर्जित धन से बनाया गया भोजन चाहे जितनी भी सात्त्विक आहार सामग्रियों व शुद्धता-पवित्रता का ध्यान रखकर बनाया गया हो, परंतु वह भी तामसिक ही माना गया है।

प्याज, लहसुन, मांस, मछली, अंडा, सड़ा-गला, तेल में पका, तीखे मिर्च-मसालों वाला एवं तीखी गंध वाला भोजन तामसिक होता है। ऐसा भोजन ग्रहण करने से मनुष्य के मन, बुद्धि एवं आचार-विचार बिगड़ जाते हैं, अत: व्रत आदि में ऐसे भोजन को ग्रहण करने की मनाही है। सामान्यत: शाकाहारी भोजन का अर्थ निरामिष आहार से लिया जाता है, किंतु व्रत एवं अनुष्ठान आदि के संदर्भ में शाकाहारी भोजन का अर्थ 'हविष्यान्न' से होता है।

शास्त्र के अनुसार—दूध, दही, मक्खन, गाय का घी, सफेद तिल, नारियल, आँवला, चावल, मूँग, जौ, कूटू, सिंघाड़ा, सेंधा नमक, काली मिर्च, जीरा, मेवा, ताजे फल एवं देवताओं के नैवेद्य (प्रसाद) आदि हविष्यान्न में गिने जाते हैं। विद्वानों का मत है कि पूजा-पाठ एवं व्रत में ऐसे हविष्यान्न को ही ग्रहण करना चाहिए। अध्यात्म विद्या के पुरोधा ऋषियों ने बहुत पहले ही आहार के उन सूक्ष्म गुणों का अत्यंत गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया था।

उन ऋषियों ने अपने शोधों में यह पाया था कि प्रत्येक खाद्य पदार्थ अपने भीतर सात्त्विक, राजसिक व तामसिक गुण धारण किए हुए होते हैं और इन गुणों को धारण किए हुए पदार्थ के सेवन से व्यक्ति की मनोभूमि का निर्माण भी वैसा ही हो जाता है। अपने अध्ययन में उन्होंने यह भी पाया था कि आहार में निकटवर्ती स्थिति का प्रभाव ग्रहण करने का भी एक विशेष गुण होता है।

यही कारण है कि दुष्ट, दुराचारी, दुर्भावनायुक्त या हीन मनोवृत्ति के लोग यदि भोजन पकावें या परसें तो उनके

वे दुर्गुण आहार के साथ सम्मिश्रित होकर खाने वाले पर अपना प्रभाव अवश्य डालते हैं। उदाहरण के लिए—एक बार महात्मा आनंद स्वामी ने एक हत्यारे के यहाँ भोजन किया तो रात में उनको हत्या के सपने आने लगे। जब उन्होंने सुबह उठकर उसके कर्म के बारे में जाना तो वे पछताए कि उन्होंने अनजाने में गलत व्यक्ति के यहाँ भोजन कर लिया।

न्याय और अन्याय, पाप और पुण्य से अर्जित किए हुए पैसे से जो अन्न खरीदा गया है, उससे भी उसे ग्रहण करने वाला व्यक्ति प्रभावित होता है। अनीति की कमाई से जो अन्न खाने के लिए पकाया जाता है, वह उसे ग्रहण करने वाले व्यक्ति को प्रभावित करता है और जिसके कारण वह भी उस अन्न के संस्कार से प्रभावित हो अनीतिपूर्वक कमाई करने के लिए प्रेरित हो जाता है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर ही उपनिषद् के ऋषियों ने साधक को सतोगुणी आहार अपनाने के लिए बहुत जोर दिया है।

साधक के लिए मद्य, मांस, प्याज, लहसुन, मसाले, चटपटे, उत्तेजक, नशीले, गरिष्ठ, बासी आदि तमोगुणी प्रकृति के पदार्थ त्याग देने योग्य हैं। इसी प्रकार दुष्ट प्रकृति के लोगों द्वारा बनाया हुआ अथवा अनीति से कमाया हुआ आहार भी उसके लिए सर्वथा त्याज्य है। साधक को आहार के संदर्भ में उपरोक्त बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है; क्योंकि अन्न में उपस्थित संस्कार उसकी साधना को किसी भी भाँति प्रभावित कर सकते हैं।

उपनिषदों में आहार के संदर्भ में अनेक महत्त्वपूर्ण उपदेश दिए गए हैं; यथा 'ग्रहण किए जाने वाले आहार (अन्न) के तीन भाग होते हैं। उसका जो स्थूल भाग है, वह मल बनता है; जो मध्यम भाग है, वह मांस बनता है और जो सूक्ष्म भाग है, वह मन बन जाता है। इसी तरह पीने वाले जल के भी शरीर में प्रवेश करने के उपरांत तीन भाग होते हैं। उसका जो स्थूल भाग है, वह मूत्र बन जाता है; जो मध्यम भाग है, वह रक्त बन जाता है और जो सूक्ष्म भाग है, वह प्राण बन जाता है। छांदोग्य उपनिषद् के अध्याय-6, खंड-5 में कहा गया है कि **'हे सौम्य! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाक् तेजोमय है।'**

आहार के संबंध में पाशुपत ब्रह्मोपनिषद् में कहा गया है कि 'आहार में अभक्ष्य त्याग देने से चित्त शुद्ध हो जाता है। इसीलिए आहारशुद्धि से चित्त की शुद्धि स्वयमेव हो जाती है और क्रमशः अज्ञानता की ग्रंथियाँ टूटती चली जाती हैं और ज्ञान होता जाता है।' वहीं छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि 'आहार शुद्धि से अंतःकरण की शुद्धि होती है। अंतःकरण के शुद्ध होने से भावना दृढ़ हो जाती है और भावना की स्थिरता से हृदय की समस्त गाँठें खुल जाती हैं।'

अथर्ववेद में अनुपयुक्त अन्न को त्याज्य ठहराया गया है। प्राचीनकाल में प्रत्येक व्यक्ति आहार ग्रहण करने से पूर्व यह देखता था कि वह अन्न किस प्रकार के व्यक्ति के द्वारा उपार्जित एवं निर्मित है और उसमें थोड़ा भी दोष होने पर वह उसे त्याग देता था। उस समय केवल पुण्यात्माओं का अन्न ही लोग स्वीकार करते थे। किसी के पुण्यात्मा होने की एक कसौटी यह भी थी कि वे लोग उसका अन्न ग्रहण करते हैं या नहीं।

अथर्ववेद (9/8/8) में यह कहा गया है—

सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नंनाश्नन्ति।

अर्थात वही व्यक्ति पुण्यात्मा है, जिसका अन्न दूसरे खाते हैं। वाल्मीकि रामायण में अंतःकरण को देवता के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा गया है—

यदन्न पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः।

अर्थात मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसा ही उसके देवता खाते हैं। आहार के संदर्भ में छांदोग्य उपनिषद् (7/26/2) में कहा गया है—

यावत्साधनसमाप्ति शरीरधारणं च अवश्यं कार्यम्,
न्यायार्जितधनेन महायज्ञादिकं कृत्वा तच्छिष्टाशनेन
एव शरीरधारणं कार्यम्,
आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

अर्थात जब तक साधन की समाप्ति न हो जाए, तब तक शरीर को धारण करना आवश्यक है और वह शरीर-संरक्षण, न्याय से उपार्जित धन के द्वारा, महायज्ञादि करके उससे बचे हुए अन्न के आहार से ही करना उचित है; क्योंकि आहार की शुद्धि से अंतःकरण की शुद्धि होती है और उससे सुनिश्चित स्मृति प्राप्त होती है। अतः व्यक्ति को आहार व उसके प्रभाव को ध्यान में रखकर ही उसे उपयोग में लाना चाहिए। ❑

गुरु की महिमा अपरंपार

भारतीय संस्कृति के पंचतत्त्व हैं—गुरु, गायत्री, गीता, गंगा और गौ। इन पंचतत्त्वों में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। गुरु तत्त्व की महिमा का वर्णन करते हुए अंततः शास्त्र भी निःशब्द हो जाते हैं। गुरु की महिमा का बखान करने में प्रायः शास्त्रज्ञ, वेदज्ञ, ब्रह्मज्ञानी भी स्वयं को असमर्थ ही पाते हैं। तभी तो संत कबीर ने कहा है—

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु-गुन लिखा न जाय॥

अर्थात सारी धरती को कागज, सभी वनों के वृक्षों को कलम व सातों समुद्रों के जल को स्याही बनाकर लिखने पर भी गुरु के गुण नहीं लिखे जा सकते। आखिर क्यों हैं गुरु की इतनी महिमा, इतनी गरिमा? गुरु 'गु' और 'रु' इन दो शब्दों से बना है। 'गु' का अर्थ है 'अंधकार' और 'रु' का अर्थ है 'दूर करने वाला, मिटाने वाला।'

इस प्रकार गुरु का अर्थ हुआ अंधकार को हटाने वाला, मिटाने वाला अर्थात अंधकार को हटाकर प्रकाश की ओर ले जाने वाले को गुरु कहते हैं। अज्ञान ही अंधकार है और ज्ञान ही प्रकाश है। अस्तु गुरु वह है, जो शिष्य के अज्ञानरूपी अँधेरे को मिटाकर उसके जीवन को ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित कर देता है। जो शिष्य की आत्मा को, आत्मज्ञान से आलोकित कर देता है, वही गुरु है।

वे गुरु ही तो हैं, जो मोह और माया की निद्रा में सोये हुए शिष्य को जगाते हैं और कहते हैं—"वत्स! अब बहुत सो लिया, अब और कितना सोओगे? कितने जन्मों तक तुम ऐसे ही सोते रहोगे? न जाने तुम अब तक कितनी बार जन्मे और मरे हो? वत्स! अब तो चेत जाओ। तुम कब तक जन्म-मरण के चक्रव्यूह में पड़े घिसते और पिटते रहोगे? तुम कब तक दुःख, कष्ट, क्लेश के मारे रोते, बिलखते और सिसकते रहोगे? तुम विषय-भोगों को भोगकर सुख पाने की मिथ्या मृगमरीचिका में कब तक भटकते रहोगे?

"वत्स! तुम तो अजर, अमर, अविनाशी आत्मा हो। तुम भौतिक शरीर नहीं हो। यह भौतिक शरीर तो तुम्हारी आत्मा का आवरण मात्र है। इसलिए तुम भौतिक शरीर से जुड़े सुख-सुविधा व सगे-संबंधियों तक ही स्वयं को सीमित न करो। वत्स! तुम आत्मा के रूप में परमात्मा के दिव्य अंश हो। अस्तु तुम शरीर की नहीं, आत्मा की उपासना करो। तुम आत्मा में विराजमान परमात्मा की उपासना करो। तुम स्वयं के लिए शाश्वत सुख, सौंदर्य, आनंद व मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर लो। इस दुर्लभ मानव जीवन का पल-पल बीता जा रहा है। इसलिए अब तो जाग जाओ वत्स! तुम उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्ति की ओर चल पड़ो।"

सद्गुरु के इस जागरण संदेश को सुनकर अगणित लोग माया-मोह की चिर निद्रा से जागकर स्वयं को ही नहीं, बल्कि अगणित लोगों को निहाल कर सके। सद्गुरु के इसी आह्वान, आश्वासन और जागरण संदेश को सुनकर तो इस धरा पर अगणित बुद्धपुरुष हुए, महावीर, गौतम, तुलसी, मीरा, कबीर, रैदास, शंकर, नानक आदि प्रकाश पुरुष, बुद्धपुरुष हुए जिन्होंने गुरुकृपा से पूरे जगत् में सद्ज्ञान का पावन प्रकाश फैलाया। इस जगत् में ज्ञान का अमृत बाँटा। कालांतर में महर्षि दयानंद सरस्वती, श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्रीरमण महर्षि, श्रीअरविंद, स्वामी शिवानंद, युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी आदि अगणित शिष्य और सद्गुरु हुए, जिन्होंने गुरु-शिष्य की महान परंपरा को आगे बढ़ाया।

सनातन संस्कृति में गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। गुरु को ईश्वर के विभिन्न रूपों—ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के रूप में स्वीकार किया गया है। गुरु का ज्ञान पाकर शिष्य में एक नए मनुष्य का जन्म होता है। ज्ञान पाते ही शिष्य की जीवन-दृष्टि बदल जाती है। जीवन और जगत् के प्रति उसका नजरिया बदल जाता है। इस प्रकार गुरु शिष्य में एक नए मनुष्य का सृजन करता है, एक नए मनुष्य को जन्म देता है।

अब से पूर्व शिष्य का जीवन कितना भी निकृष्ट, घृणित क्यों न रहा हो, पर गुरु का ज्ञान पाते ही वह अंदर से बिलकुल बदला हुआ-सा होता है। वह अब निकृष्ट और घृणास्पद नहीं, बल्कि सर्वत्र प्रेमास्पद और पूज्यास्पद हो

जाता है। इस प्रकार शिष्य में एक नए मनुष्य को जन्म देने के कारण ही तो गुरु को ब्रह्मा कहा गया है।

गुरु अपने शिष्य पर सदैव नजर बनाए रखता है ठीक वैसे ही, जैसे माँ अपने बच्चों पर सदा ध्यान रखती है। बच्चा कहीं आग अथवा पानी में न कूद पड़े। गुरु भी माँ की तरह अपने शिष्यों पर नजर बनाए रखते हैं कि कहीं शिष्य साधना से विचलित, स्खलित न हो जाए। इस हेतु वे सदैव उसका साधनात्मक पोषण, संवर्द्धन करते रहते हैं। इसलिए तो गुरु विष्णु रूप हैं।

कोई शिष्य अपने पूर्व संस्कारों के कारण साधना में शीघ्र उन्नति करने लगता है तो कोई लगातार पिछड़ता जाता है। गुरु अपनी दिव्यदृष्टि से यह देख लेते हैं कि शिष्य के पूर्वजन्म अथवा इस जन्म के शुभ-अशुभ कर्मों के संस्कार उसे साधना से विचलित कर रहे हैं, इसलिए शिष्य की प्रगति रुकी हुई है। तब गुरु शिष्य के कर्म-संस्कारों का एवं अन्यान्य दोषों का संहार करते हैं। उसके चित्त को कर्म-संस्कारों से शून्य व मुक्त कर देने का उपाय बताते हैं। अस्तु शिष्य के दोषों व कर्म-संस्कारों के संहार का मार्ग प्रशस्त करने के कारण गुरु को शिवरूप कहा गया है।

अज्ञानतावश अपने कर्म-संस्कारों के प्रभाव में आकर व्यक्ति जब कामना, वासना, लोभ, मोह की दलदल में फँसकर घृणित कर्म, अशुभ कर्म, बुरे कर्म में लिप्त हो जाता है, तब सारे संसार की नजर में वह घृणा व उपहास का पात्र बन हीन भावना से भर जाता है और आत्महत्या तक करने की सोचने लगता है। उसके अपने भी पराए हो जाते हैं और वह दर-दर की ठोकरें खाता-फिरता है।

दुर्लभ मानव जीवन को पेट-प्रजनन, परिवार की संकीर्ण परिधि में रखकर उसे बरबाद कर देने के कारण उसे आत्मग्लानि होती है। उसे कहीं कोई सहारा नहीं दिख पड़ता। तब अंततः वह भगवान को याद करता है और कहता है—"प्रभु! अब इस जगत् में अपना कोई रहा नहीं। अब तो अपने भी मुझसे मुँह फेरने लगे हैं। प्रभु! अब मैं क्या करूँ? अब मुझे जीने का मन नहीं करता। अब मैं जीकर करूँगा भी क्या? इस जगत् में मुझ-सा अभागा व्यक्ति और कोई नहीं।"

इस प्रकार जब व्यक्ति आत्मग्लानि और हीन भावना से ग्रसित हो जाता है तब सचमुच उसे उबारने के लिए सद्गुरु ही सामने आते हैं। या यों कहें कि शरणागतवत्सल भगवान उसे शरण देने को गुरु रूप में प्रकट होते हैं। जहाँ संसार उसे घृणा और उपहास का पात्र समझता है तो वहीं परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी जैसे सद्गुरु उसे अपनी शरण में ले लेते हैं और इस रूप में जगत् को यह शिक्षण भी देते हैं कि किसी का सुधार उपहास करने से नहीं, बल्कि उसे नए सिरे से सोचने और समझने का अवसर देने से होता है। व्यक्ति को ऐसा अवसर सद्गुरु के अलावा भला कौन दे सकता है? संसार से ठुकराए हुए व्यक्ति को भी अंततः आश्रय सद्गुरु के चरणों में ही मिलता है।

परमवंदनीया माताजी ने निराश्रितों को आश्रय देने को आश्वस्त करता हुआ गीत इसीलिए गाया था—

तुम न घबराओ न आँसू ही बहाओ अब।
और कोई हो-न-हो, पर मैं तुम्हारा हूँ॥
मैं खुशी के गीत गा-गा कर सुनाऊँगा॥
गा-गा कर सुनाऊँगा॥
मानता हूँ ठोकरें तुमने सदा खाईं।
जिंदगी के दाँव में हारें सदा पाईं॥
बिजलियाँ दुःख की निराशा की सदा टूटीं।
मन गगन पर वेदना की बदलियाँ छाईं॥
पोंछ दूँगा मैं तुम्हारे अश्रु गीतों से।
तुम सरीखे बेसहारों का सहारा हूँ॥
मैं तुम्हारे घाव धो मरहम लगाऊँगा।
मैं विजय के गीत गा-गा कर सुनाऊँगा॥
खा गई इनसानियत को भूख यह भूखी।
स्नेह ममता को गई पी प्यास यह सूखी॥
जानवर भी पेट का साधन जुटाते हैं।
जिंदगी का हक नहीं है रोटियाँ रूखीं॥
और कुछ माँगो, हँसी माँगो, खुशी माँगो।
खो गए हो दे रहा तुमको इशारा हूँ॥
आज जीने की कला तुमको सिखाऊँगा।
जिंदगी के गीत गा-गा कर सुनाऊँगा॥

उनके स्नेह व वात्सल्य ने अगणित लोगों के जीवन को रूपांतरित किया। उन्हीं के प्रेरक संदेशों से कोटिशः लोगों ने भौतिक व भोगवादी जीवन-दृष्टि के स्थान पर एक नई आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि पाई और दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हुए।

परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने गायत्री-उपासना, सविता ध्यान व यज्ञ को सार्वभौम, सर्वसुलभ

व सरलतम रूप में प्रस्तुत करके विश्वमानवता पर सचमुच बड़ा उपकार किया। उन्होंने अध्यात्म के विशाल महासागर को उपासना-साधना-आराधना की त्रिवेणी के रूप में प्रस्तुत व प्रवाहित कर जनमानस को उसमें नित्य स्नान कर अपने जीवन को सुख, सौंदर्य और सौभाग्य से भर लेने का सौभाग्य प्रदान किया।

परमात्मा की प्रेरणा व इच्छा से ही ऐसे दिव्य पुरुष सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय की दिव्य भावना लिए इस धराधाम पर युग-युग में अवतरित होते हैं। धन्य हैं ऐसे गुरु, जो शरणागतवत्सल हैं, भक्तवत्सल हैं एवं जो पापियों को भी भवसागर से पार करने वाले हैं और जो साधकों, शिष्यों व भक्तों के लिए मोक्ष, मुक्ति व भगवद्दर्शन का मार्ग प्रशस्त करने में समर्थ हैं।

धन्य हैं ऐसे सद्गुरु, जो देव संस्कृति, सनातन संस्कृति की धर्मध्वजा को दिग्दिगंत तक पहुँचाने व फहराने में समर्थ होते हैं। साथ ही धन्य हैं वे लोग, वे शिष्य, वे साधक जो ऐसे सद्गुरु की शरण पाते हैं, उनसे जीवन जीने की कला सीखते हैं व साधना से सिद्धि पाने में सफल होते हैं।

वस्तुत: गुरु ऐसी मुक्त हो गई चेतनाएँ हैं, जो बिलकुल राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर जैसी हैं, पर वे हमारी जगह खड़ी हैं, जो हमारी जैसी सामान्य दीखती हैं, साधारण दीखती हैं, पर हैं असामान्य और अति असाधारण; क्योंकि उनके अंदर ज्ञान का, करुणा का, प्रेम का अथाह सागर जो लहरा रहा है। उनके अंदर निराकार ब्रह्म साकार होकर उनके रूप में बैठा है। वह चेतना अति असाधारण है, पर दीखती हमारे जैसी ही है। वह हमारे पास है, पर पास होकर भी हमसे दूर, बहुत दूर है और दूर होकर भी हमारे पास और बिलकुल पास है।

ऐसी चेतना को अनुभूत करने को, अनुभव करने को, महसूस करने को शिष्य में शिष्यत्व और समर्पण ही तो आवश्यक है अन्यथा उनके पास होकर भी हम उन्हें पहचान नहीं पाते; उन्हें समझ नहीं पाते। संपूर्ण श्रद्धा, समर्पण ही वह पात्रता है, जिसके बल पर शिष्य को ऐसे सद्गुरु की कृपा प्राप्त हो पाती है और गुरुकृपा ही तो भगवत्कृपा है। पवित्रदृष्टि, प्रेमदृष्टि विकसित होते ही शिष्य सामान्य से, साधारण से दिखने वाले गुरु में ब्रह्म को देखने लग जाता है। वह उन्हें समझने और पहचानने लग जाता है और उनके आदेश के पालन को सदैव तत्पर हो जाता है।

अत: यह आवश्यक ही नहीं, बल्कि हमारा परम कर्त्तव्य भी है कि हम अपने गुरु के बताए नियम-अनुशासन का अपने जीवन में सदैव पालन करें। हम अपने गुरु के आदर्श व अनुशासन को अपने नित्य जीवन में जियें। हम अपने गुरु की महिमा का बखान मात्र न करें, बल्कि गुरु के बताए मार्ग पर चलकर उनकी महिमा को धारण कर स्वयं भी महान बनें और गुरुकार्य में पूर्ण श्रद्धा, समर्पण के साथ सदैव लगे रहें। यही सच्ची गुरुभक्ति है एवं भगवद्भक्ति है। सचमुच गुरु की महिमा अपरंपार है। ❑

भगवान बुद्ध जैतवन में ग्रामवासियों को उपदेश कर रहे थे। शिष्य अनाथपिंडक भी समीप बैठा धर्मचर्चा का लाभ ले रहा था। तभी सामने से महाकश्यप, मौद्गल्यायन, सारिपुत्र, चुंद और देवदत्त आदि आते हुए दिखाई दिए। उन्हें देखते ही बुद्ध ने कहा—"ब्राह्मण मंडली आ रही है, उनके योग्य आसन का प्रबंध करो।" अनाथपिंडक ने आयुष्मानों की ओर दृष्टि दौड़ाई, फिर आश्चर्य व्यक्त करते हुए बुद्ध से कहा—"भगवन्! ब्राह्मण तो इनमें कोई एक ही है, शेष कोई क्षत्रिय, कोई वैश्य और कोई अस्पृश्य भी हैं।" यह सुनकर बुद्ध हँसे और बोले—"तात्! जाति जन्म से नहीं, वरन गुण, कर्म और स्वभाव से पहचानी जाती है। श्रेष्ठ, रागरहित, धर्मपरायण, संयमी और सेवाभावी होने के कारण ही मैंने इन्हें ब्राह्मण कहा है।"

श्रद्धा किसके प्रति और क्यों करें ?

भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता के 9वें अध्याय के 25वें श्लोक में कहते हैं कि—

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

जो देवताओं को पूजते हैं, वे देवों को प्राप्त होते हैं, जो पितरों को पूजते हैं, वे उन्हें प्राप्त करते हैं और जो भूत-प्रेतों को पूजते हैं, वे भूत-प्रेतों को ही प्राप्त होते हैं और मेरा पूजन करने वाले भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं और मैं उन्हें भवसागर से पार लगा देता हूँ। इस श्लोक में जो पूजन करने की बात की गई है, वह व्यक्ति की श्रद्धा-भावना से जुड़ी हुई है।

श्रद्धा यानी वह श्रेष्ठतम बिंदु, जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं। व्यक्ति जिसे पूजता है, जाने-अनजाने वह वही होना चाहता है। वह उसका अंतिम लक्ष्य होता है, जिसे वह पाना चाहता है। इसलिए भगवान कहते हैं कि जो जिसे पूजता है, वह उसी को प्राप्त होता है। देवताओं को पूजने वाले देवों को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं और भूत-प्रेतों को पूजने वाले भूत-प्रेतों को ही प्राप्त होते हैं। इसीलिए किसी के प्रति भी श्रद्धा बड़ी सोच-समझकर करनी चाहिए; क्योंकि व्यक्ति की श्रद्धा जहाँ उमड़ती है, वह भी उसी ओर चल पड़ता है।

भावनाओं की तीव्र लहर, जैसा हम होना और बनना चाहते हैं व जिसके प्रति उसके मन में गहन रुचि, प्रबल जिज्ञासा एवं उमंग है—श्रद्धा कहलाती है। श्रद्धा सघन भावनाओं का वह सकारात्मक स्वरूप है, जो अर्पित हो बहना चाहता है और जो अपने इष्ट के अनुरूप बनना चाहता है। हम जो होना चाहते हैं, वही हमारा श्रद्धापात्र हो जाता है। श्रद्धापात्र यानी हमारे भविष्य की तस्वीर जैसा हम होना चाहते हैं। जो व्यक्ति जिसके प्रति श्रद्धा करता है, वह धीरे-धीरे वैसा ही हो जाता है। इसलिए श्रद्धा बहुत सोच-समझकर करनी चाहिए; क्योंकि जहाँ हमारी श्रद्धा होती है, हम वहीं समर्पित होते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि **यजन्ते सात्त्विका देवान्** अर्थात सात्त्विक मनुष्य देवों का पूजन करते हैं यानी सात्त्विक मनुष्य देवों की तरह बनना चाहते हैं। देवों की तरह दिव्यता को प्राप्त होना चाहते हैं। यहाँ पर सात्त्विक मनुष्यों की श्रद्धा देवों पर है, इसलिए वे देवों का पूजन करते हैं, ताकि वो देवत्व को प्राप्त हो सकें। सात्त्विक मनुष्य यानी जिसके जीवन में संतुलन आ गया है, जिसके जीवन में प्रकाश आ गया है, जिसके जीवन में सामंजस्य का मधुर संगीत बजने लगा है, जिसके जीवन में सत्त्व की सुगंध आ गई है, वो देवों का पूजन करता है और वह वो सभी कार्य करता है, जिससे देवता प्रसन्न हों और उस पर कृपालु हों।

सात्त्विक मनुष्य, देवताओं का पूजन करने के लिए सात्त्विक साधनाओं को करते हैं। वे शास्त्रों व वेदों में वर्णित नियमों, व्रतों, मंत्रों, पूजन-विधियों के अनुसार उपास्य देवों का विधि-विधान से पूजन करते हैं, अनुष्ठान करते हैं और उन देवों के परायण हो जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि **यक्षरक्षांसि राजसाः**—अर्थात राजसिक मनुष्य यक्ष और राक्षसों की पूजा करते हैं; क्योंकि उनकी आकांक्षा पद-प्रतिष्ठा, धन व यश प्राप्त करने की होती है। यक्ष और राक्षस गण पद, प्रतिष्ठा, धन, यश को बहुत महत्त्व देते हैं और इनके स्वामी होते हैं।

सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए राजसिक मनुष्य यक्ष व राक्षसों की पूजा करते हैं व उनको पाने के लिए इस हेतु सुनिश्चित व्रतों का, नियमों का, पूजन-विधियों का पूरी तरह से पालन करते हैं, ताकि सांसारिक वैभवों के स्वामी यक्ष व राक्षसगण उनकी कामना की पूर्ति में उनकी मदद करें। राजसिक मनुष्यों का लक्ष्य धन, यश, पद, प्रतिष्ठा एवं सांसारिक सुख-ऐश्वर्य को प्राप्त करने का होता है, इसलिए वे यक्ष व राक्षसों का पूजन करते हैं और अपना अभीष्ट लक्ष्य इनकी मदद से प्राप्त करना चाहते हैं। यक्ष व राक्षसों की पूजा का विधि-विधान भी राजसिक होता है और उसे उसी अनुरूप किया भी जाता है।

वे आगे कहते हैं कि **प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसाः जनाः**—अर्थात तामस स्वभाव के मनुष्य सकामभाव से भूत-प्रेतों का पूजन करते हैं, उनके नियमों को धारण

करते हैं और उनकी मदद चाहते हैं, ताकि उनकी मदद से वे अपने कार्य पूरे कर सकें। तामसिक मनुष्यों द्वारा की जाने वाली भूत-प्रेतों की पूजा का विधि-विधान भी तामसिक होता है, जिसमें श्मशान जाकर मुरदों पर बैठकर पूजा करना, भूत-प्रेतों के मंत्रों को जपना, मांस-मदिरा आदि अपवित्र चीजों से पूजा करना शामिल है।

इस तरह की पूजा से अधिक-से-अधिक सांसारिक कामनाएँ ही पूरी हो पाती हैं और मृत्यु होने पर व्यक्ति की दुर्गति होती है अर्थात तामसिक पूजा करने वाले लोग मरने के उपरांत भूत-प्रेतों की योनि को ही प्राप्त करते हैं और वे इसके आगे नहीं बढ़ पाते; क्योंकि तामसिक पूजा के विधि-विधानों को अपनाने से व्यक्ति ऐसे कर्म करता है, जिसके कारण उसकी सद्गति नहीं हो पाती और उसकी जीवात्मा भूत-प्रेतों की योनि में ही अटक कर रह जाती है।

भूत-प्रेत, पिशाच आदि की योनि ही अशुद्ध है और उनकी पूजा-विधि, सामग्री, आराधना आदि भी अत्यंत अपवित्र हैं। इनका पूजन करने वाले इनमें न तो भगवद्बुद्धि रख सकते हैं और न ही निष्कामभाव रख सकते और इसीलिए उनका सिर्फ पतन ही होता है। इस संदर्भ एक सच्ची घटना घटित हुई थी। 'कर्णपिशाचिनी' की उपासना करने वाला कोई व्यक्ति था। उसके पास कोई कुछ पूछने आता तो वह उसके बिना पूछे ही बता देता कि यह तुम्हारा प्रश्न है और यह उसका उत्तर है। ऐसा करने से उसने बहुत धन कमाया।

उस विद्या के चमत्कार से प्रभावित हो एक व्यक्ति उसके पीछे पड़ गया और आग्रह करने लगा कि मुझे भी यह विद्या सिखाओ। उस विद्या के जानकार व्यक्ति ने उसे समझाते हुए कहा कि यह विद्या चमत्कारी तो बहुत है, पर स्वयं का कल्याण करने वाली नहीं है, पर जिज्ञासु व्यक्ति ने उस जानकार व्यक्ति से विद्या के रहस्य को बताने का दबाव बनाया। विवश हो उसने बताया कि मैं अपने कान में विष्ठा लगाए रखता हूँ और जब कोई मुझसे पूछने आता है तो उस समय कर्णपिशाचिनी आकर मेरे कान में उसका प्रश्न और उस प्रश्न का उत्तर सुना देती है और मैं वैसा ही कह देता हूँ।

उस जिज्ञासु व्यक्ति ने उस विद्या के जानकार व्यक्ति से पुनः पूछा कि आपका मरना कैसे होगा—इस विषय में आपने उससे कुछ पूछा है कि नहीं? इस पर उसने बताया कि मेरा मरना तो नर्मदा के किनारे होगा। इस बात को हुए अभी कुछ ही दिन हुए थे और एक दिन उस विद्या के जानकार व्यक्ति की मृत्यु हो गई। घटनास्थल से इस बात का पता चला कि जब वह कर्णपिशाचिनी सिद्ध व्यक्ति अपना अंतिम समय जानकर नर्मदा में जाने लगा तब वह कर्णपिशाचिनी 'शूकरी' बनकर उसके सामने आ गई थी।

वह व्यक्ति उस मृत्यु के क्षण में अपने उद्धार हेतु नर्मदा की तरफ भागा था, किंतु तभी उस कर्णपिशाचिनी ने शूकरी के वेश में उसको नर्मदा में जाने से पहले ही किनारे पर मार दिया था। उस व्यक्ति की इस भयावह मृत्यु का कारण यह था कि अगर वह नर्मदा में जाकर मरता तो उसकी सद्गति हो जाती, परंतु कर्णपिशाचिनी ने उसकी सद्गति नहीं होने दी और उसको नर्मदा के किनारे पर ही मारकर अपने साथ ले गई।

यही कारण है कि देवता, पितर आदि की उपासना स्वरूप त्याज्य नहीं है, परंतु भूत, प्रेत, पिशाच आदि की उपासना स्वरूप से ही त्याज्य है। इसका एक कारण यह भी है कि देवताओं में यदि भगवद्भाव और निष्काम भाव हो तो उनकी उपासना भी कल्याण करने वाली होती है, परंतु भूत, प्रेत आदि की उपासना करने वालों की कभी सद्गति होती ही नहीं, बल्कि दुर्गति ही होती है। भूत-प्रेतों के उद्धार के लिए उनका श्राद्ध-तर्पण करने में कोई नुकसान नहीं है। इसका कारण यह है कि उन भूत-प्रेतों को अपना इष्ट मानकर उनकी उपासना करना ही पतन का कारण है।

भटकती आत्माओं के उद्धार के लिए श्राद्ध-तर्पण करने में कोई दोष की बात नहीं है। ऐसे कई उदाहरण देखने को मिलते हैं, जिनमें संत-महात्माओं के द्वारा भी अनेक भूत-प्रेतों का उद्धार हुआ है। पूजन श्रद्धाभाव से संपन्न होता है। बिना श्रद्धा-भावना के पूजन मात्र कर्मकांड बनकर रह जाता है। जिसका पूजन किया जाता है, जिस पर व्यक्ति की श्रद्धा टिकी रहती है, वह अदृश्य रूप से उसके संपर्क में रहता है और मृत्यु के उपरांत भी उसका यह सान्निध्य-संपर्क बना रहता है और वह उसे उपलब्ध होता है। इसलिए बहुत सोच-समझकर हमें अपनी श्रद्धा निर्धारित करनी चाहिए।

श्रद्धा-भावसहित की जाने वाली पूजा के भी तीन प्रकार हैं—

1. आसानी से उपलब्ध होने वाली सात्त्विक सामग्रियों से की जाने वाली पूजा सात्त्विक पूजा कहलाती है।

2. कठिनाई से उपलब्ध होने वाली महँगी सामग्रियों से की जाने वाली पूजा राजसिक पूजा कहलाती है।

3. रक्त, मांस, पशुबलि आदि अशुद्ध तामसिक सामग्रियों से की जाने वाली पूजा तामसिक पूजा कहलाती है।

इसके अलावा सात्त्विक पुरुषों द्वारा सात्त्विक सामग्रियों से की जाने वाली पूजा भी सात्त्विक पूजा कहलाती है। सात्त्विक पुरुषों द्वारा राजसिक सामग्रियों से की जाने वाली पूजा राजसिक पूजा कहलाती हैं। सात्त्विक पुरुषों द्वारा तामसिक पूजा करना उनके स्वभाव में ही नहीं होता। राजसिक पुरुषों द्वारा सात्त्विक सामग्रियों द्वारा की जाने वाली पूजा सात्त्विक पूजा कहलाती है और राजसिक सामग्रियों द्वारा की जाने वाली पूजा राजसिक पूजा कहलाती है।

तामसिक पुरुषों द्वारा सात्त्विक सामग्रियों से की जाने वाली पूजा भी पूरी तरह से सात्त्विक नहीं होती; क्योंकि उनके संपर्क से वह सात्त्विक सामग्री भी अपनी सात्त्विकता खो देती है। उनके द्वारा राजसिक सामग्रियों से की जाने वाली पूजा राजसिक पूजा कहलाती है और तामसिक सामग्रियों से की जाने वाली पूजा तामसिक पूजा कहलाती है। सात्त्विक पुरुष निष्काम भाव से देवों को पूजते हैं, तो वहीं राजसिक पुरुष सांसारिक कामना की पूर्ति हेतु यक्ष व राक्षसों का विधि-विधानपूर्वक पूजन करते हैं और तामसिक पुरुष स्वार्थसिद्धि हेतु अथवा अपनी सुरक्षा हेतु भूत-प्रेतों को पूजते हैं।

सात्त्विक पूजा के बारे में भगवान श्रीकृष्ण गीता के 9वें अध्याय के 26वें श्लोक में कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

अर्थात जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीतिसहित स्वीकार करता हूँ।

शबरी द्वारा किया जाने वाला भगवान का पूजन सात्त्विक पूजा का उदाहरण है। जब भगवान श्रीराम शबरी के आश्रम में पधारे तो उन्हें देखकर शबरी ने मतंग मुनि के वचनों को याद किया कि एक दिन स्वयं भगवान तुम्हारे घर चलकर आएँगे। अपने गुरु मतंग मुनि के द्वारा दिए गए आश्वासन को याद कर शबरी भगवान के आगमन व उनके स्वागत हेतु नित्यप्रति भोर में उठकर रास्ता बुहारती और जंगल से ढेर सारे फूल लाकर उस रास्ते पर बिछा देती व साथ ही जंगल के फलों को भी स्वयं चखती और जो फल मीठे होते, उन्हीं को वह भगवान के लिए ले आती।

भगवान के पधारने की राह वह दिनभर देखती; जो उसकी दिनचर्या-जीवनचर्या बन गई थी। अनजाने में ही सही, पर यही उसकी पूजा की विधि बन गई। जब उसने अपने आश्रम के सामने सचमुच में भगवान श्रीराम के दर्शन किए, उनके कमलसदृश नेत्र, उनकी विशाल भुजाएँ, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किए हुए सुंदर, साँवले और गोरे दोनों भाइयों (भगवान श्रीराम व लक्ष्मण) को देखा तो वह उनके चरणों से लिपट गई।

प्रेम में शबरी इतनी मग्न हो गई कि उसके मुख से कोई शब्द नहीं निकल रहा था। वह बार-बार भगवान के चरण-कमलों में अपना सिर नवा रही थी।

सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे॥
कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥

—अरण्यकांड, 34

जल का पात्र लेकर शबरी ने आदरपूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोए और फिर उन्हें सुंदर आसनों पर बैठाया। इसके बाद उसने अत्यंत रसीले और स्वादिष्ट कंद, मूल और फल लाकर श्रीराम जी को दिए। भगवान श्रीराम ने प्रेमसहित उन फलों को ग्रहण किया। शबरी अपने दोनों हाथ प्रेमसहित जोड़कर भगवान के समक्ष कहने लगी कि अब मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ। मैं तो अत्यंत मूढ़बुद्धि स्त्री हूँ। तब भगवान ने उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर कहा कि मैं तो केवल भक्ति का संबंध ही मानता हूँ और फिर भगवान ने उसे नवधा भक्ति का उपदेश दिया।

श्रीरामचरितमानस के बालकांड में उल्लेखित दक्ष-यज्ञ राजसिक यज्ञ का उदाहरण है; क्योंकि यह एक विशाल यज्ञ था। दक्ष को जब ब्रह्मा जी ने प्रजापतियों का नायक बना दिया तो इतना बड़ा अधिकार पाकर उनके हृदय में अभिमान आ गया और फिर उन्होंने भगवान शिव का अपमान करने के लिए इस यज्ञ को करने की योजना बनाई थी। इस यज्ञ के संबंध में गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग॥ *60*॥

अर्थात दक्ष ने सब मुनियों को बुला लिया और वे बड़ा यज्ञ करने लगे। जो देवता यज्ञ का भाग पाते हैं, दक्ष ने उन सबको आदरसहित निमंत्रित किया। प्रजापति दक्ष ने अपने इस यज्ञ में भगवान शिव के अतिरिक्त सभी को निमंत्रण दिया था और सभी देवों को यज्ञ का भाग व स्थान दिया था। जब प्रजापति दक्ष की पुत्री सती ने यह देखा कि इस यज्ञ में भगवान शिव को यज्ञ का कोई भाग नहीं दिया गया है, तब उन्होंने इसे भगवान शिव का अपमान माना और दक्षपुत्री होने के कारण उन्होंने अपनी देह को योगाग्नि से वहीं भस्म कर डाला और फिर शिव गणों द्वारा यज्ञ का भी विध्वंस कर दिया गया।

जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा।
आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥

लंकाकांड में वर्णित मेघनाद द्वारा की जाने वाली पूजा तामसिक पूजा का उदाहरण है।

मेघनाद द्वारा किए जाने वाले यज्ञ में वह रक्त और भैंसे की आहुति दे रहा होता है और तब हनुमान जी उसके यज्ञ का विध्वंस कर देते हैं।

सात्त्विक पुरुष सात्त्विक पूजा करने में अपनी रुचि रखते हैं, राजसिक पुरुष राजसिक पूजा में और तामसिक पुरुष तामसिक पूजा करने में अपनी रुचि रखते हैं, लेकिन यदि किसी व्यक्ति का किसी भूत-प्रेत में भगवद्भाव यानी सात्त्विक भाव हो भी जाए तो उस भूत-प्रेत का ही उद्धार हो जाता है, किंतु भूत-प्रेतों में भगवद्भाव रखने वाला व्यक्ति कोई सात्त्विक पुरुष ही होता है।

उदाहरण के लिए परम सात्त्विक भक्त—नामदेव को एक बार एक भयंकर ब्रह्मराक्षस दिखाई दिया तो वे उसे भगवत्स्वरूप ही समझकर प्रसन्नतापूर्वक बोल उठे—

भले पधारे लम्बकनाथ!
धरती पाँव, स्वर्ग लों माथ,
योजन भर लाँबे हाथ॥
सिव सनकादिक पार न पावें,
अनगिन साज सजाए साथ॥
नामदेव के तुम ही स्वामी,
कीजै मोकों आज सनाथ॥

उनके इस प्रकार कहने मात्र से उस प्रेत का उद्धार हो गया और उसकी जगह पर भगवान प्रकट हो गए। इस तरह हम जिनकी भी पूजा करते हैं, जिनके प्रति मन में श्रद्धा रखते हैं, वे हमसे अपना संपर्कसूत्र बनाए रखते हैं और अंत समय में हमें फिर वे ही याद आते हैं और हम उन्हीं को प्राप्त होते हैं। ❑

अंधड़ आया और एक विशाल वृक्ष गिरा। वृक्ष के नीचे बैठे एक ऊँट की कमर टूट गई और टहनियों पर लगे घोंसलों में पक्षी और अंडे-बच्चे कुचलकर चूर हो गए। उनका मांस वहाँ बिखरा पड़ा था। एक भूखा सियार अनायास ही इतना भोजन पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने आस-पास नजर दौड़ाई तो उसे नदी के तट पर एक बड़ा-सा मेंढ़क दिखा। सियार ने सोचा कि पहले इसे लपक लिया जाए, नहीं तो यह हाथ से निकल जाएगा। सियार ने मेंढ़क पर झपट्टा मारा ही था कि मेंढ़क नदी में खिसक गया। सियार भी उस चिकनी मिट्टी में फिसलता चला गया और गहरे पानी में समा गया। इसीलिए कहा गया है कि जो है, उसी में संतोष करना बुद्धिमत्ता है। जो लोभ के चक्कर में पड़ते हैं, वे अंततः पछताते हैं।

अहं का आकार है अहंकार

अहं जब आकार लेता है तो इसे अहंकार कहते हैं। कर्त्तापन का अभिमान ही अहंकार है। यह स्वयं को बड़ा घोषित करता है। अपने होने का एहसास होना अच्छी बात है, पर उस एहसास का इस हद तक बढ़ जाना कि कुछ और भान ही न रहे, निश्चित रूप से समस्या पैदा करता है। उसके होने पर हम यह स्वीकार ही नहीं कर पाते कि हम भी गलत हो सकते हैं। फिर हम हर वस्तु, हर चीज के केंद्र में खुद को बनाने लगते हैं।

अपने अहं की जड़ों को फैलाने से रोकना आसान नहीं होता है। क्या हमने कभी सोचा है कि कुछ लोग इतने कटु क्यों होते हैं, या बिना किसी कारण हमारी जिंदगी से बाहर क्यों चले जाते हैं? क्या कभी यह सोचा है कि पिछले हजार वर्षों में जितने युद्ध लड़े गए, वे शुरू क्यों हुए? यहाँ तक कि कुछ युद्ध तो काफी भयानक थे। इनमें न जाने कितनी जिंदगियाँ खतम हो गईं और क्या हमने कभी उन तमाम अपराधों के बारे में सोचा, जो लाखों लोगों की जान ले रहे हैं?

चाहे युद्ध हों या फिर अपराध—ये सभी एक ही स्रोत से शुरू होते हैं, जो है अहंकार। इससे मुक्ति पाने के लिए सबसे जरूरी यह समझना है कि यह आखिर क्या है? अहंकार का अर्थ उस भाव से है, जिसमें हम सदा यह मान करके चलते हैं कि हम ही सही हैं और हम कभी गलत हो ही नहीं सकते हैं। यदि हम यह स्वीकारने की स्थिति में होते हैं कि हम भी कभी गलत हो सकते हैं तो निश्चित रूप से हमारे जीवन से यह भी विदा होता है और जीवन भी तुलनात्मक दृष्टि से सुखद बनता है।

अहंकार असुरक्षा, भय, घृणा और धारणा को पालता-पोसता है। जो भी हमारे लिए सही है, यह उसका विरोधी है। यह हमारे प्रगति-पथ पर छाया अँधेरा है। यह हम सभी के व्यक्तित्व में है। यह हमसे दूर कहीं नहीं जाता। इससे पार पाने के लिए सबसे अच्छा तरीका यही है कि हम स्वयं शांत रहने की कोशिश करें। ऐसा करना कई धर्मों का मूल तत्त्व भी रहा है—विशेष रूप से भारतीय दर्शन का।

सभी धर्मों के मूल शिक्षण में निरहंकारिता के गुण को आत्मसात् करने की प्रेरणा दी गई है, परंतु इसके साथ ही यह भी सर्वविदित सत्य है कि इस पर विजय सहजता से प्राप्त नहीं हो पाती। इस पर विजय प्राप्त करने के लिए एक ऐसे चुनौतीपूर्ण पथ पर चलना स्वीकार करना पड़ता है, जिसे आज के भौतिकवादी युग में, जहाँ त्वरित लाभ को प्राथमिकता दी जाती है के लिए स्वीकार कर पाना संभव नहीं हो पाता।

इसलिए बेहतर विकल्प यही है कि हम खुद को सजग एवं सतर्क रखें, जिससे हम जान सकें कि अहंकार की वजह क्या है? यह हर जगह है। इसका लगातार विस्तार होता जाता है। इसके कारण ही संबंध टूटने पर हम सामने वाले को नुकसान पहुँचाते हैं। इसकी वजह से ही हम सड़क पर किसी दूसरी गाड़ी द्वारा थोड़ी मुश्किल आने पर भी अपनी गाड़ी उसके आगे खड़ी करके उसे परेशान करने लगते हैं।

अहंकार के कारण ही हम अपनी गलती नहीं मानते। इसके कारण ही हम दूसरों के साथ अनुचित व्यवहार करते हैं। इसी कारण अपनी विफलता या अवहेलना हम कतई पसंद नहीं करते। इसकी यह सूची काफी लंबी है। हर दिन ऐसी तमाम परिस्थितियों से हमारा वास्ता पड़ता है, जब हम कई तरीकों से अपनी अहंकारपूर्ण प्रतिक्रिया जाहिर करते हैं। फिर जब परिस्थितियाँ हमारे वश में नहीं रह जातीं या वे हमारे खिलाफ चली जाती हैं, तब हम तुरंत स्वयं को दुर्भाग्यशाली मान बैठते हैं और इसका दोष दूसरे लोगों को देने लगते हैं; जबकि उन समस्याओं का मूल कारण अहंकार होता है।

यह एक ऐसी समस्या है, जिसके कारण हमारे व्यक्तित्व का पतन होता है और हमारी इस कमजोरी का लाभ भी दूसरे ही उठाते हैं। यदि अहंकाररूपी इस जटिल समस्या का सरल समाधान हमें प्राप्त करना है तो उसकी शुरुआत अपनी गलतियों को स्वीकार करने से करनी होगी।

इस स्वीकार्यता के क्रम में हमें अपनी आत्मग्लानि का भी सामना करना पड़े, तब भी इस पथ पर चलना ही एकमात्र उचित मार्ग होगा। समस्या यह है कि जन्म-जन्मांतरों की आदतें इनसान को सरलता से अपना जीवन बदलने का अवसर नहीं प्रदान करती हैं।

अहंकार मनुष्य के अंतर्मन पर इस तरह से कब्जा करके बैठ जाता है कि उसको अस्वीकार करने का साहस हर व्यक्ति नहीं जुटा पाता है। इसके पीछे एक कारण यह भी है कि हमने कभी अपनी त्रुटियों को स्वीकार करने का भाव स्वयं के भीतर जगाया ही नहीं होता है। जब हम अपनी गलतियों को स्वीकारने और प्रायश्चित करने के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं तो यह अहंकार को एक बड़ा आकार लेने से रोक देता है।

हमें सदा अपनी कमियों की समीक्षा करते रहना चाहिए और उन्हें सुधारने का अनवरत प्रयत्न करते रहना चाहिए। इसके साथ ही हमें अपने भीतर विवेक पैदा करना चाहिए। विवेक का मतलब है—उचित और अनुचित का भेद।

जब हम गलत और सही के बीच के सूक्ष्म भेद को जानकर अच्छा करने लगते हैं तो अहंकार में कमी आने लगती है व साथ ही उसके श्रेय को स्वयं न लेकर ईश्वर को समर्पित कर देने से कर्त्तापन का अभाव होने लगता है।

अहंकार ही हमारे व्यक्तित्व के पतन का कारण है और इसका समूल नाश ही हमारे जीवन का एकमात्र ध्येय होना चाहिए। ❑

उपनिषदों में कथा आती है कि एक बार देवासुर संग्राम में देवताओं ने असुरों को परास्त कर दिया। असुरों को हराने के उपरांत देवताओं को अपनी शक्ति पर बड़ा अभिमान हो गया। परमात्मा ने विचार किया कि देवताओं का अभिमान उचित नहीं है। वे ब्रह्मरूप धारण कर देवसमूह के समक्ष उपस्थित हुए और एक तिनका उनके सामने रख दिया। इसके पश्चात उन्होंने देवताओं से उस तिनके पर अपना प्रभाव दिखाने को कहा।

अग्नि देव अपना संपूर्ण तेज दिखाने पर भी उस तिनके को जला न सके, अपनी संपूर्ण शक्ति लगाने पर भी वायु देव उसे उड़ा न सके और देवराज इंद्र के उस तिनके पर वज्रप्रहार करने के बाद भी वह अविचलित रहा। हारकर देवताओं ने माँ भगवती का ध्यान किया तो वे प्रकट हुईं और बोलीं—"देवगणो! वह तिनका नहीं, स्वयं तेजस्वरूप ब्रह्म हैं। यह सारा जगत् मात्र उन्हीं की शक्ति से संचालित है। तुम्हारी विजय का कारण भी वे ही हैं। हम सभी परमात्मा की कार्य-योजना में निमित्तमात्र हैं तो उसे पूर्ण करने में अहंकार कैसा?" माँ भगवती की बातें सुनकर देवताओं का अभिमान चूर-चूर हो गया।

व्यावहारिक जीवन में भगवद्भक्ति की अभिव्यक्ति

सूर्यनारायण जब 10 वर्ष के थे, तभी उनके माता-पिता चल बसे। सूर्यनारायण के पिता एक सच्चे भगवद्भक्त थे। वे सूर्यनारायण के उपासक थे। नित्य ब्राह्ममुहूर्त में उठकर गायत्री महामंत्र का जप, नित्य उदीयमान सूर्य का ध्यान, यज्ञ एवं रामायण, गीता, वेद, पुराण आदि ग्रंथों का नित्य स्वाध्याय—यही सूर्यनारायण के पिता सोमनारायण की दिनचर्या थी। ऐसे धर्मपरायण, भगवत्परायण माता-पिता के आँगन में सूर्यनारायण का जन्म हुआ था।

सूर्य भगवान के उपासक होने एवं उनके प्रति परम अनुराग होने के कारण ही सोमनारायण ने अपने पुत्र का नाम सूर्यनारायण रखा था। माता-पिता के चले जाने के बाद सूर्यनारायण अनाथ हो गए, पर माता-पिता के दिए दिव्य संस्कार के कारण सूर्यनारायण के हृदय में भी भगवान सूर्य के प्रति विशेष अनुराग था। भगवद्भक्ति उन्हें मानो अपने माता-पिता से विरासत में मिली थी। अपने पिता से उन्होंने सूर्य भगवान की पूजा, गायत्री मंत्र जप, सविता ध्यान, यज्ञ, स्वाध्याय आदि आध्यात्मिक पद्धतियाँ सीखी थीं।

माता-पिता के स्वर्ग सिधार जाने के बाद भी उनकी यह दिनचर्या जारी रही। वे भी ब्राह्ममुहूर्त में उठ जाते, संध्यावंदन करते, उदीयमान सूर्य का ध्यान करते, यज्ञ एवं शास्त्रों का स्वाध्याय करते। फिर गाँव के पास के विद्यालय व महाविद्यालय से ही उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। वे 24 वर्ष के हो चुके थे। उनका विवाह गाँव से 10 किलोमीटर दूर बसे एक गाँव में हो गया। वे पत्नी के साथ घर पर रहने लगे। घर के पास थोड़ी-सी पुश्तैनी जमीन थी, उस पर शाक-सब्जी उगाकर वे अपना जीविकोपार्जन करने लगे। उस छोटी-सी जमीन से गुजारा करना मुश्किल-सा लगने लगा। गाँव के लोगों व रिश्तेदारों ने उन्हें कहीं जाकर रोजगार ढूँढ़ने की सलाह दी, पर प्रकृति से विशेष लगाव होने के कारण वे अपने गाँव से बाहर जाकर कोई नौकरी या रोजगार करने को न तो तैयार थे न ही उसमें उनकी कोई दिलचस्पी थी।

गाँव के पास कल-कल बहती नदी में जाकर ब्राह्ममुहूर्त में नित्य स्नान, ध्यान, भजन-पूजन आदि करना, फिर घर पर आकर अग्निहोत्र करना, शास्त्रों का स्वाध्याय करना, गोसेवा करना आदि छोड़कर रोजगार के लिए गाँव से कहीं बाहर जाना उन्हें कतई पसंद न था। रिश्तेदारों ने अंत में कहा कि तुम गाँव में ही एक दुकान खोल लो, जिससे तुम्हारा गुजारा चल सके। रिश्तेदारों ने आर्थिक मदद की, जिससे उन्होंने अपने घर के पास ही एक छोटी-सी दुकान खोल ली।

दुकान में बैठे हुए भी वे खाली समय में शास्त्रों का स्वाध्याय किया करते, आए-गए ग्राहकों को भगवद्उपासना आदि करने को प्रेरित करते। वे संसार में रहते हुए भी मानो सांसारिक माया-मोह, आसक्ति आदि से बिलकुल अछूते थे। इसलिए वे बिना अधिक मुनाफा लिए ग्राहकों को सामान दे दिया करते। उनकी दृष्टि तो सबमें सूर्यनारायण को देखती थी। फिर ग्राहक रूप भगवान के साथ वे छल-कपट भला कैसे कर सकते? उनकी भगवद्उपासना गहरी होती गई, वे भगवद्ध्यान में डूबते गए, शास्त्रों का दिव्य ज्ञान प्राप्त होता गया। इससे उनका चित्त निर्मल होता गया। उनके कर्म स्वत: निष्काम होने लगे।

घर पर आए-गए आगंतुकों व साधुओं की वे जी भरकर आवभगत करते, इससे उन्हें आत्मिक आनंद प्राप्त होता। एक दिन मध्यरात्रि को उन्हें एक दिव्य स्वप्न हुआ। उन्होंने देखा कि गगनमंडल दिव्य प्रकाश से जगमगा उठा है। धीरे-धीरे वह प्रकाश, प्रकाशशरीर में परिणत होकर सूर्यनारायण भगवान के रूप में प्रकट हुआ। भगवान सूर्य ने कहा—"पुत्र! मैं विश्वचक्षु सूर्यनारायण हूँ, तुम्हारे पिता ने बहुत काल तक मेरी उपासना की थी। उसी के फलस्वरूप मेरे प्रसाद से तुम्हारा जन्म हुआ है। इसी जन्म में तुम्हें परमात्म लाभ होगा और तुम कृतार्थ होगे। तुम अविराम अपनी भगवद्उपासना, ध्यान, जप, अग्निहोत्र, निष्काम भक्ति, निष्काम कर्म आदि करते रहना। तुम्हारी साधना एक दिन अवश्य सफल होगी।"

सूर्यनारायण ऐसे दिव्य स्वप्न को देखकर गद्‌गद हो गए। उस दिन से उन्होंने अपनी साधना को और भी तीव्र कर दिया। उन्हें दुकान में भी भगवद्‌भक्ति में रमे हुए देखकर आस-पास के अन्य दुकानदार, व्यापारी उनका मजाक उड़ाते और कहते कि दुकान व व्यापार भक्ति से नहीं, चतुराई और होशियारी से चलते हैं। ऐसा करने से ही तो यहाँ के अन्य व्यापारी आज कितने बड़े व्यापारी हो गए, पर सूर्यनारायण आज भी उसी छोटी-सी दुकान तक सीमित रह गया। इन बातों का सूर्यनारायण पर कोई असर न होता।

दुकानदारी भी कहीं बिना झूठ बोले, बिना धूर्तता, चतुराई, होशियारी किए होती है भला? दरअसल ऐसी बातें वे लोग ही करते हैं जिन्हें झूठ, धूर्तता का अभ्यास होता है और जो सरलता, निष्कपटता, विनम्रता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा आदि को व्यापार की बढ़ोतरी में बाधा समझते हैं। यही कारण है कि ऐसे लोग प्रायः सूर्यनारायण की सरलता, सादगी व ईमानदारी का मजाक बनाया करते थे, पर सत्यनिष्ठा, सरलता, निष्कपटता व ईमानदारीपूर्वक व्यापार करते हुए सूर्यनारायण को जो हार्दिक व आत्मिक आनंद प्राप्त होता था, उसकी कल्पना भी धूर्तता, शातिरता में विश्वास करने वाले धूर्त व शातिर लोग भला कैसे कर सकते थे।

सामान्य व्यक्ति तो अधिक मुनाफा कमाने के चक्कर में सरलता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा को पलभर में ही तिलांजलि दे देता है और वह भी अन्य लोगों की तरह उसी रंग में रँगने लगता है। उसके पास पैसे भी आने लगते हैं। वह धीरे-धीरे बेईमानी, धूर्तता की दलदल में ऐसा फँस जाता है कि उसमें से निकलना मुश्किल-सा हो जाता है। साथ ही आत्मग्लानि होने के कारण वह शारीरिक-मानसिक बीमारियों का शिकार भी होने लगता है। धन होते हुए भी ऐसे लोग धन से सुख प्राप्त नहीं कर पाते।

ऐसे लोग न सिर्फ अपनी नजरों में, बल्कि समाज की नजर में भी गिर जाते हैं। ऐसे लोगों की भौतिक व आध्यात्मिक, दोनों ही दृष्टि से हानि-ही-हानि होती है। सूर्यनारायण जैसे सत्यनिष्ठ, सरल, निश्छल, निष्कपट लोग संघर्ष करते हुए अवश्य नजर आते हैं एवं अंततः वे भौतिक व आध्यात्मिक, दोनों ही दृष्टि से लाभ-ही-लाभ में होते हैं। अस्तु यह कहना कि अमुक रोजगार, व्यापार में बिना झूठ बोले, कपट किए, छल किए काम नहीं चलता, बिलकुल ही अतार्किक और असंगत है।

सत्य, प्रेम, करुणा, ईमानदारी, सरलता आदि ऐसे मानवीय गुण हैं, जो जीवन के हर क्षेत्र में हमें सम्मान व सफलता दिलाते हैं। साथ ही हमारी आत्मिक प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। सूर्यनारायण के साथ भी यही हुआ। वे व्यापार करते हुए भी लोभ, मोह, बेईमानी में नहीं फँसे। उन्होंने अपनी सत्यनिष्ठा, सरलता बनाए रखी। वे अनवरत भगवद्‌उपासना करते रहे। कठिनाइयों में भी उन्होंने सच्चाई, ईमानदारी नहीं छोड़ी। दरअसल मनुष्य में ऐसी सत्यनिष्ठा, दृढ़ता, शक्ति आती भी तो भगवद्‌उपासना, स्वाध्याय व सत्संग से ही है।

सूर्यनारायण की सत्यनिष्ठा व भगवद्‌भक्ति के कारण समाज में सर्वत्र उनका मान-सम्मान बढ़ने लगा। उनका व्यापार भी बढ़ने लगा। व्यापार के मुनाफे को वे दान-परोपकार आदि में ही खरच कर दिया करते। सचमुच भगवद्‌भक्ति की वास्तविक अभिव्यक्ति भी तो यही है, जो भगवद्‌भक्त के आचरण से, व्यवहार से अभिव्यक्त होती है।

कहते हैं एक दिन सूर्यनारायण को सचमुच भगवद्‌दर्शन प्राप्त हुआ। वे जीवन में रहते हुए भौतिक रूप से भी खुशहाल रहे और आध्यात्मिक रूप से भी मोक्ष, मुक्ति, भगवद्‌दर्शन प्राप्त कर धन्य हुए, निहाल हुए। ❑

आत्मा साक्षी विभुः पूर्ण एको मुक्तश्चिदंक्रियः।
असंगो निस्पृहः शान्तो भ्रमात्संसारवानिव॥

—अष्टावक्र गीता

अर्थात आत्मा साक्षी है, व्यापक है, पूर्ण है, एक है, मुक्त है, चैतन्यस्वरूप है, क्रियारहित, संगरहित, इच्छारहित और शांत है। मात्र भ्रम होने के कारण संसार सत्य जैसा भासता है।

मानवीय गरिमा की कसौटी—विनम्रता

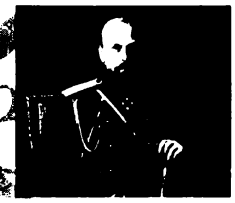

रूस के राजा एलेग्जेंडर अक्सर अपने देश की आंतरिक दशा को जानने के लिए वेश बदलकर पैदल घूमने जाया करते थे। एक दिन घूमते-घूमते वे एक नगर में पहुँचे। रास्ता मालूम करने के लिए वे किसी स्थानीय व्यक्ति की तलाश में आगे बढ़े। कुछ ही दूरी पर उन्हें एक हवलदार सरकारी वर्दी पहने हुए दिखाई पड़ा। एलेग्जेंडर ने उसके पास जाकर पूछा—"महाशय! अमुक स्थान पर जाने का रास्ता बता दीजिए।"

हवलदार ने पहले तो एलेग्जेंडर को घूरा, फिर अकड़कर कहा—"मूर्ख! तू देखता नहीं? मैं सरकारी हाकिम हूँ; मेरा काम रास्ता बताना नहीं है।" एलेग्जेंडर की उपेक्षा करते वह आगे कहने लगा—"चल हट! किसी दूसरे से पूछ।" एलेग्जेंडर ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया—"महोदय! यदि सरकारी आदमी भी किसी यात्री को रास्ता बता दे तो कुछ हर्ज थोड़ा ही है। खैर! मैं किसी दूसरे से पूछ लूँगा, पर इतना तो बता दीजिए कि आप किस पद पर काम करते हैं।"

ऐंठते हुए हवलदार ने जवाब दिया—"अँधा है क्या ? मेरी वर्दी को देखकर पहचानता नहीं कि मैं कौन हूँ?" एलेग्जेंडर ने कहा—"शायद आप पुलिस के सिपाही हैं।" उसने कहा—"नहीं, उससे ऊँचा।" एलेग्जेंडर ने अनुमान लगा कर कहा—"क्या नायक हैं?" हवलदार ने सिर हिला कर मना करते हुए कहा—"नहीं! उससे भी ऊँचा।" एलेग्जेंडर ने फिर पूछा—"हवलदार हैं?"

दंभ प्रदर्शित करते हुए हवलदार कहने लगा—"हाँ! अब तू जान गया कि मैं कौन हूँ, पर यह तो बता कि इतनी पूछताछ करने का तेरा क्या मतलब? और तू है कौन?" एलेग्जेंडर ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"मैं भी सरकारी आदमी हूँ।" यह सुनकर सिपाही की ऐंठ अब कुछ कम हुई; उसने धीमे स्वर में पूछा—"क्या तुम नायक हो?"

एलेग्जेंडर ने जवाब दिया—"नहीं! उससे ऊँचा।" हवलदार थोड़ा सकुचाया और पुनः पूछ बैठा—"तब क्या आप हवलदार हैं?" एलेग्जेंडर ने उत्तर दिया—"नहीं! उससे भी ऊँचा।" हवलदार अब और भी अधिक घबराया और जिज्ञासावश निवेदन के स्वर में पूछा—"दारोगा?" एलेग्जेंडर ने उत्तर दिया—"नहीं, उससे भी ऊँचा।" हवलदार ने फिर पूछा—"कप्तान?" एलेग्जेंडर ने कहा—"उससे भी ऊँचा।"

कुतूहलवश हवलदार ने पूछा—"सूबेदार?" एलेग्जेंडर बोले—"उससे भी ऊँचा।" अब तो हवलदार थर-थर काँपने लगा और सलाम करता कहने लगा—"तब आप मंत्री जी हैं?" एलेग्जेंडर ने कहा—"भाई! बस एक सीढ़ी और बाकी रह गई है।" सिपाही ने गौर से देखा तो सादा पोशाक पहने बादशाह एलेग्जेंडर सामने खड़े मालूम पड़े। हवलदार के होश उड़ गए, वह गिड़गिड़ाता हुआ बादशाह के पैरों पर

ध्यान का अर्थ है—अपनी मानसिकता को लक्ष्य-विशेष पर अविचल भाव से केंद्रीभूत किए रहना। *—परमपूज्य गुरुदेव*

गिर पड़ा और बड़ी दीनता से अपने अपराध की माफी माँगने लगा।

राजा एलेग्जेंडर ने मीठी वाणी में कहा—"भाई! तुम पद की दृष्टि से कुछ भी हो, पर व्यवहार की कसौटी पर बहुत नीचे हो। जो जितना नीचा होता है; उसमें उतना ही अहंकार होता है और उतना ही वह अकड़ता है। यदि ऊँचा बनना चाहते हो तो पहले मनुष्य बनो, सहनशील व नम्र बनो। अपनी ऐंठ कम करो; क्योंकि तुम जनता के सेवक हो. इसलिए तुम्हारी तो यह विशेष जिम्मेदारी है।"

वे उसे प्रेमपूर्वक समझा रहे थे कि मानवीय गरिमा की सबसे बड़ी कसौटी है—विनम्रता, निरहंकारिता। ये ही वे सद्गुण होते हैं, जो किसी व्यक्ति को महान बनाते हैं और जिनके अभाव में किसी भी पद के व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं रह जाता है। एलेग्जेंडर द्वारा दिए गए शिक्षण ने हवलदार को बहुत प्रभावित किया और उसे अपनी भूल का एहसास हुआ। उस दिन से ही उसने अपना व्यवहार बदल लिया। ❑

जिसकी जैसी श्रद्धा, वैसा उसका जीवन

'श्रद्धा' शब्द से हम सभी परिचित हैं, लेकिन इसमें छिपे गहरे भाव को समझना बहुत जरूरी है। श्रद्धा यानी जहाँ पर हमारी भावनाएँ गहराई से जुड़ी हुई हैं, जिन चीजों के प्रति हमारे मन में गहरी आस्था व विश्वास है, जिन चीजों में हमें बहुत आनंद आता है, उनके प्रति हमारी रुचि होती है—वही श्रद्धा है। श्रद्धा एक तरह से हमारे व्यक्तित्व का आधार है और यह हमारी भावनाओं का केंद्र भी है; क्योंकि इसी के इर्द-गिर्द हमारा जीवन संचालित होता है, हम अपनी श्रद्धा के अनुरूप ही किसी भी चीज के प्रति अपनी रुचि दरसाते हैं और उसके प्रति अपना झुकाव प्रदर्शित करते हैं।

इसी के अनुसार हमारी चिंतनशैली चलती है और हमारे विचार भी हमारी श्रद्धा के अनुसार ही होते हैं। यही कारण है कि हमारी रुचि, प्रवृत्ति, लगाव, व्यवहार और यहाँ तक कि हमारा आहार-विहार भी हमारी श्रद्धा के अनुसार होता है। अत: श्रद्धा यानी हमारी भावनाओं का केंद्र, जिस आधार पर हम टिके हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति में यह बड़े धीरे-धीरे विकसित होती है, लेकिन जब यह विकसित हो जाती है तो व्यक्ति फिर उस श्रद्धा के अनुरूप गढ़ जाता है। जैसे—एक संगीतकार जब आरंभ में संगीत का अभ्यास करना शुरू करता है तो इसके पीछे उसके मन में संगीत सीखने की रुचि होती है।

संगीत के प्रति उसकी रुचि ही उसके मन की श्रद्धा है, जो उसे संगीत को सिखाने में, संगीत का अभ्यास करने में सहायक होती है। संगीत के अभ्यास के दौरान सबसे पहले वह ताल सीखता है, धीरे-धीरे उस ताल का अभ्यास करता है, सुरों का अभ्यास करता है और इतना अभ्यास करता है कि एक दिन वह ठीक तरह से ताल व सुरों का संगम अपने मन के अनुसार करता है। आरंभ में संगीत के अभ्यास के दौरान संगीत सीखने वाले व्यक्ति का ध्यान ताल व सुरों की ओर होता है, लेकिन जब वह इसमें प्रवीण हो जाता है तो फिर ताल व संगीत उसके मन के अनुसार गति करते हैं।

विधा में पारंगतता का यह चमत्कार एक दिन में नहीं होता, बल्कि इस चमत्कार को घटित होने में कभी-कभी महीनों व कभी-कभी वर्षों लग जाते हैं। जो जितना ज्यादा अभ्यास करता है, संगीत में वह उतना ही प्रवीण हो जाता है, संगीत के अभ्यास के दौरान संगीतकार में संगीत के प्रति श्रद्धा कम नहीं होती, बल्कि नित्य-निरंतर बढ़ती है। अगर उसके मन में संगीत के प्रति श्रद्धा न हो या श्रद्धा अभ्यास के दौरान कम हो जाए, उसमें अरुचि हो जाए तो फिर संगीतकार बनने का उसका सफर अधूरा ही रह जाएगा। इस तरह श्रद्धा हमारी किसी भी चीज के प्रति हो सकती है और इसके बल पर ही हम उस क्षेत्र में लगातार बढ़ोतरी हासिल करते हैं।

अभ्यास करने से यह श्रद्धा बढ़ती है। अभ्यास के दौरान किसी भी प्रकार का इसमें लाभ मिलने से यह श्रद्धा बढ़ती है, लेकिन किसी भी तरह की लगातार हानि से यह श्रद्धा कमजोर होती है। जिनकी भोजन के प्रति श्रद्धा होती है, वे भाँति-भाँति का भोजन बनाना सीखते हैं और उसे चखने, उसे सजाने व परोसने की कला हासिल करते हैं। आज जो टेलीविजन में मास्टर शैफ के शो आयोजित होते हैं, वो इसी का परिणाम हैं। जो नृत्य व गायन के प्रति श्रद्धा रखते हैं, वे भाँति-भाँति से नृत्य करना सीखते हैं और उसमें अपनी महारत हासिल करते हैं, फिर उनके नृत्य को देखकर दुनिया अचरज में पड़ जाती है, उन्हें पुरस्कृत करती है और उन्हें सम्मानित भी करती है।

जो खेल-कूद में अपनी श्रद्धा रखते हैं, वे किसी एक या कई खेलों में खेलने का हुनर विकसित करते हैं और खेलों में जीतकर अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करते हैं। खेलों में प्रतियोगिता करना, उनमें जीत हासिल करना उनकी श्रद्धा को दरसाता है। सामान्य व उच्च श्रेणी की श्रद्धा ही व्यक्ति को जीवन में आगे बढ़ाती है, उसे लाभ पहुँचाती है और उसे सम्मानित भी करती है; जबकि निम्न श्रेणी की श्रद्धा व्यक्ति के जीवन को बरबाद कर देती है और उसे हर तरीके से नुकसान पहुँचाती है।

यदि किसी व्यक्ति की रुचि व्यसनों के प्रति होती है तो शुरू में उसे व्यसन करना अच्छा नहीं लगता, लेकिन जब उसे वो आदत गहराती है तो वही कड़वी व बदबूदार चीजें उसे अति प्रिय लगने लगती हैं और फिर वह रोज उन्हें पीने लगता है। उसे पता होता है कि शराब पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, फिर भी वह पीता है और अपना होश गँवाता है। महँगी-से-महँगी शराब खरीदने में अपना पैसा खरच करता है और पीकर घर के लोगों के साथ दुर्व्यवहार भी करता है और एक दिन ऐसा भी आता है, जब वह शराब उसे बीमार कर उसके प्राण ले लेती है। इसी तरह एक धूम्रपान करने वाला जब धूम्रपान करता है तो शुरू में उसे धूम्रपान करने में बहुत कठिनाई होती है, लेकिन फिर भी वह धीरे-धीरे उसमें लिप्त हो जाता है और फिर उसे परेशानी नहीं होती, बल्कि आनंद आता है।

जीवन में जब कभी भी उसे किसी भी प्रकार की चिंता सताती है तो वह धूम्रपान करने लग जाता है, लेकिन इससे निकलने वाला धुआँ न केवल उसके जीवन को, बल्कि उसके परिवार के अन्य सदस्यों के लिए भी बहुत हानिकारक साबित होता है। किसी भी तरह का व्यसन हमारे स्वास्थ्य और जीवन के लिए फायदेमंद नहीं होता, बल्कि नुकसानदेह ही होता है, लेकिन फिर भी व्यक्ति इसे करता है; क्योंकि इसमें उसकी रुचि होती है। इसी रुचि के कारण ही यह कार्य उसे प्रिय लगता है। अपनी गहरी रुचि के कारण वह अन्य कई नुकसानों को झेलने के बावजूद इन्हें करता चला जाता है; क्योंकि इसमें उसे जो क्षणिक आनंद मिलता है, वह उसे बार-बार पाना चाहता है, भले ही बाद में इन सबके कारण उसे बहुत ज्यादा नुकसान क्यों न हो।

हर व्यक्ति तुरंत लाभ पाना चाहता है और उसके कारण होने वाले दूरगामी नुकसान की वह ज्यादा परवाह नहीं करता। कुछ समझदार व्यक्ति ही ऐसे होते हैं, जो अपने दूरगामी लाभ के बारे में सोचते हैं और उसके कारण तुरंत होने वाले थोड़े नुकसान की परवाह नहीं करते। उदाहरण के लिए डॉक्टर की दवा कड़वी होती है व उसे लेने व पीने में भी हमें कठिनाई अनुभव होती है, लेकिन उसके कारण हम जल्दी स्वस्थ हो जाते हैं। यानी दवा वर्तमान में तो हमें कष्ट, अनुभव कराती है, लेकिन उसके दूरगामी परिणाम से हम स्वस्थ होते हैं। जबकि शराब पीने के आदी लोग शराब पीने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं करते, वरन बड़ी ही सहजता से एक ही घूँट में उसे पी जाते हैं, लेकिन उसके दूरगामी परिणाम में वे शराब के कारण बीमार पड़ते हैं, फिर डॉक्टर उन्हें शराब न पीने की सलाह देते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि श्रद्धा के अनुसार ही व्यक्ति अपने लिए कार्यक्षेत्र का चुनाव करता है। श्रद्धा के अनुरूप ही व्यक्ति अपने लिए भोजन-पानी, रुचि व आदतें विकसित करता है। यदि उसकी श्रद्धा अच्छी चीजों के प्रति है, तो उसका व्यक्तित्व सुविकसित होता है और अगर उसकी श्रद्धा बुरी चीजों के प्रति है, तो उसका व्यक्तित्व विकृत होता है। अच्छी चीजों के प्रति रुचि होने से व्यक्ति अपने जीवन में पुण्य-संपदा अर्जित करता है और बुरी चीजों या निम्न कोटि की चीजों के प्रति श्रद्धा होने से व्यक्ति अपने जीवन में पाप-संपदा को अर्जित करता है। पुण्य-संपदा व्यक्ति के जीवन को खुशहाली से भर देती है और पाप-संपदा व्यक्ति के जीवन को बरबादी की ओर ले जाती है। इसीलिए अपनी श्रद्धा के चुनाव के प्रति हमें सजग रहना चाहिए। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

कौन हैं परब्रह्म परमेश्वर ?

भ्रमण के दौरान गुरु नानकदेव की मुलाकात साधु, संत, फकीर, योगी, तपस्वी आदि से होती ही रहती थी। उसी क्रम में एक दिन उनकी भेंट एक योगी मंडली से हुई। वे योगी अपने कानों में बड़े-बड़े कुंडल एवं विशेष वस्त्र धारण किए हुए थे। उनके बीच वार्त्ता होने लगी। नानकदेव के तर्कसंगत विचार सुनकर योगी मंडली बहुत प्रभावित हुई। उसके प्रमुख योगी ने गुरु नानकदेव से 'परब्रह्म परमेश्वर किसे कहें' विषय पर चर्चा शुरू की।

योगी बोले—"आपकी दृष्टि में परब्रह्म परमेश्वर कौन है ? हम परमेश्वर किसे कहें ?" गुरु नानकदेव बोले—"वास्तव में हम भटक गए हैं। परमेश्वर तो केवल एक है, पर हम उसे अलग-अलग मानते हैं। परमेश्वर ही एकमात्र सत्य है और बाकी सभी नाशवान हैं। जो जन्म-मरण से परे है, वही सत्य सिद्ध प्रकाश परमेश्वर है।" तब योगी बोले—"महात्मन्! आपके तर्क में सत्य की झलक दिखाई पड़ती है। अब आप परमेश्वर में और क्या-क्या गुण हैं ? इस पर भी प्रकाश डालें।"

गुरु नानकदेव बोले—"बात सीधी-सी है योगीराज! जो दृष्टिमान है, वह नाशवान भी है। जिसका जन्म है, उसका मरण भी है। इसलिए जो केवल अदृश्य है अर्थात अनुभव प्रकाश है, वही समस्त जगत् का कर्त्ता है। उन अदृश्य परमेश्वर के विशेष गुण हैं। वे अभय हैं अर्थात उनको किसी दूसरी शक्ति से पराजित होने का डर नहीं है; क्योंकि उनके समान कोई दूसरी शक्ति है ही नहीं। बस, वे ही एकमात्र शक्ति हैं; जिनका प्रतिद्वंद्वी कोई नहीं।"

अपनी बात आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा—"वे सबसे एक समान प्रेम करने वाले हैं, उनका किसी के साथ बैर या विरोध नहीं। वे ही एकमात्र शक्ति हैं, जो कि समय के बंधन से मुक्त अर्थात परे हैं। वे न तो युवा होते हैं और न ही वृद्ध। वे तो सदैव एक समान रहने वाले अकाल पुरुष हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि उनकी उत्पत्ति कैसे हुई ?" इस पर योगी बोले—"वे तो स्वयंभू हैं।" तब गुरु नानकदेव पुन: बोले—"हाँ! बिलकुल ठीक। वे स्वयंभू हैं। उनका कोई निर्माता नहीं।"

गुरु नानकदेव ने कहा—"अब प्रश्न उठता है कि परमेश्वर की प्राप्ति हमें कैसे हो सकती है ?" योगी बोल पड़े—"हम इस कार्य के लिए समाधि लगाते हैं, चिंतन-मनन करते हैं।" उनकी बात सुनकर नानकदेव बोले—"जब तक आपके पास किसी पूर्णपुरुष का मार्गदर्शन नहीं होगा, तब तक यह समाधियाँ तथा चिंतन-मनन व्यर्थ हैं; क्योंकि सच्चे गुरु के मिलाप के अभाव में आपके किसी भी कार्य में सफलता के अंकुर नहीं फूटेंगे अर्थात पूर्ण गुरु की कृपा के बिना प्रभुमिलन असंभव है।"

यह सुनकर उन योगी ने प्रश्न किया—"पर हम सत्य गुरु, पूर्ण गुरु की कृपा के पात्र कैसे बनेंगे ?" गुरु नानकदेव ने उत्तर दिया—"गुरु की आज्ञापालन करने से ही हम परमेश्वर की कृपा के पात्र बन सकते हैं।" उन योगी ने पुन: प्रश्न किया—"आप बातें तो सत्य कह रहे हैं, परंतु प्रश्न अभी भी वैसे-का-वैसा ही है। हम यह कैसे जानें कि गुरु की हमारे लिए क्या आज्ञा है तथा उनके आदेशों का पालन कैसे हो ?"

अपनी कही बात को अधिक स्पष्ट करते हुए गुरु नानकदेव बोले—"वे ही कार्य किए जाएँ, जो परहित में हों। हमारे कार्य में सच्चाई हो, ईमानदारी हो अर्थात हम केवल कर्मकांडी होकर न रहें, बल्कि हम गुरु के उपदेश को, ज्ञान को, आदर्श को अपने जीवन में जियें भी, उतारें भी अन्यथा केवल कर्मकांडी बने रहने से गुरु की कृपा प्राप्त नहीं हो सकती और गुरु की कृपा के बगैर परमेश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती।"

उन्होंने आगे कहा—"गुरु की आज्ञा के पालन में प्रसन्नता का अनुभव करें। उसे भार समझकर नहीं करें। गुरु के किसी भी कार्य में बाधा न डालकर उसको पूर्ण करने में प्रसन्नता का अनुभव करें। बस, इन्हीं बातों से गुरु प्रसन्न होकर हमें परमेश्वर से मिलाने में सहायक होते हैं। यदि आप सचमुच परमेश्वर को पाना चाहते हैं तो कर्मकांडों के आडंबर से मुक्त होकर रोम-रोम में रमे निराकार ज्योति पुरुष, अकाल पुरुष, पूर्ण पुरुष की उपासना करें।

''परमेश्वर कभी भी किसी विशेष वेशभूषा से खुश नहीं होते। वे तो हृदय के सत्य की भाषा ही जानते हैं तथा वे सर्वत्र विद्यमान होने के साथ ही प्रत्येक मनुष्य के अंत:करण में उपस्थित हैं। प्राणिमात्र को तो उनके अनुभवरूपी दर्शनों के लिए हृदय की मैलरूपी दीवार ही हटानी होती है। मनुष्य चाहे तो उन्हें प्रत्येक क्षण महसूस कर सकता है। वे तो हर समय मनुष्य के अंग-संग हैं। केवल उनके अस्तित्व की याद ही सुमिरन है तथा दीन-दु:खियों की सेवा ही उनकी सेवा है।

''हमारा अहंकार ही हमारा बंधन है। हमें उनकी लीला में ही हर समय प्रसन्नचित्त रहना चाहिए तथा उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।'' गुरु नानकदेव ने जब योगी मंडली के सदस्यों को योग की जटिल क्रियाओं से मुक्तकर सहज व सरल रूप में परमेश्वर को पाने का मार्ग बताया तो उनकी सभी शंकाएँ समाप्त हुईं। उन सभी की जिज्ञासाएँ शांत हुईं और वे गुरु नानकदेव के कहे अनुसार उन अकाल पुरुष को अनुभव करने की साधना में प्राणपण से जुट गए। ❑

पर्णक नामक एक व्यक्ति विशुद्ध श्रम से अर्जित कमाई से अपनी गुजर-बसर करता। कभी-कभी गरीब और असहायों की भी यथायोग्य मदद करता। एक शाम घर लौटते उसे राह पर कुछ धन पड़ा मिला। उसने इसे किसी सुयोग्य को देने का निश्चय किया। कुपात्र को दान देकर वह पाप का भागी नहीं बनना चाहता था। उसने सुयोग्य की तलाश आरंभ की। उसकी बुद्धि जिसे गरीब मानती, सूक्ष्म बुद्धि उसे अस्वीकार कर देती। लावारिस धन के सुयोग्य अधिकारी की तलाश में इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए, किंतु पर्णक ने अपनी धुन में तलाश जारी रखी। एक रोज किसी कार्य हेतु नगर आए पर्णक ने देखा कि कन्वी नगरी का राजा ऋतुपर्ण अपनी विशाल सेना को लिए विंध्य देश को जीतने के लिए जा रहा है। स्थानियों की चर्चा में उसने सुना कि ऋतुपर्ण पहले ही सत्रह सौ देशों का राजा है। खजाने स्वर्णमुद्राओं से भरे हुए हैं, किंतु फिर भी उसे संतोष नहीं है। ऋतुपर्ण की सेना जब राजपथ से गुजरी तो पर्णक ने उसके वैभव के दर्शन भी कर लिए। पर्णक को अब यह निश्चय हो गया कि उसकी दृष्टि में ऋतुपर्ण ही सबसे बड़ा कंगाल है। ऋतुपर्ण की पालकी जैसे ही उधर से गुजरी, पर्णक ने उस पर धन फेंक दिया। पर्णक के इस कृत्य से राजा ऋतुपर्ण को बड़ा क्रोध आया। सेनानायकों ने उसे धर-पकड़कर ऋतुपर्ण के सम्मुख प्रस्तुत किया। खिन्न ऋतुपर्ण ने जब उसके इस कृत्य का कारण पूछा तो बड़े ही निर्दोष भाव से पर्णक ने कहा—''लावारिस धन मैं सबसे जरूरतमंद व्यक्ति को देना चाहता था। आपके पास इतना विशाल वैभव है, परंतु फिर भी आपकी तृष्णा शांत न हुई तथा और अधिक पाने की लालसा में आप मानवता को भी भुलाकर दूसरों का रक्त बहाने के लिए व्याकुल हैं। इसलिए मेरी दृष्टि में आप सबसे बड़े कंगाल हैं। अत: यह पैसा मैंने आपके पास फेंक दिया।'' ऋतुपर्ण को अपनी भूल का एहसास हुआ और वह तत्क्षण लोकोपकारी कार्यों में संलग्न हो गया।

शरणागतवत्सल हैं भगवान

वर्षों की तप-साधना से तपकर संत करुणादास जी सचमुच कुंदन बनकर निकले थे। सद्गुरु के सान्निध्य में रहकर वर्षों तक की गई कठोर तप-साधना के फलस्वरूप आत्मज्योति की जगमगाहट उनके रोम-रोम से प्रस्फुटित हो रही थी। अपने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर वे अब जन-जन के हृदय में ज्ञान की ज्योति जलाने निकले थे। इसी क्रम में वे आज हरिपुर गाँव पहुँचे थे। उनके जैसे ब्रह्मज्ञानी संत को अपने बीच पाकर लोग अपने भाग्य की सराहना करते अघाते न थे। पूरे गाँव का परिभ्रमण कर वे वहाँ के देवालय के विशाल प्रांगण में आकर बैठ गए।

उनके दर्शन व सत्संग पाने को वहाँ देखते-ही-देखते हजारों लोग एकत्रित हो गए। वहाँ बैठे लोगों पर उन्होंने एक विहंगम दृष्टि डाली व अपनी दिव्यदृष्टि से सबके मनोभाव व अंतर्दशा का अवलोकन किया। उन्होंने देखा कि वहाँ कुछ ऐसे लोग बैठे हैं, जो अपने शुभ संस्कारों के कारण स्वभावतः ही ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचिंतन में रस लेने वाले हैं। वहीं कुछ ऐसे भी हैं, जो सांसारिक माया-मोह में अत्यधिक आसक्ति होने के कारण ब्रह्मचिंतन नहीं कर पा रहे हैं। आसक्ति के बंधन को तोड़कर ब्रह्मचिंतन कर सकें, ऐसा संकल्पबल उनमें नहीं है और यदि उस स्थिति से बाहर न निकल पाए तो कई जन्मों तक ऐसे ही जीवन व मरण के चक्रव्यूह में पड़े रहकर दुःख पाते रहेंगे।

साथ ही उन्होंने देखा कि वहाँ बैठे कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपने बुरे कर्म-संस्कारों के प्रबल प्रवाह में प्रवाहित होते हुए हिंसा, लूट, अनाचार, अत्याचार आदि निम्न कर्मों में लीन रहने वाले हैं। संत प्रवर ने देखा कि ऐसी ही श्रेणी का एक ऐसा व्यक्ति भी वहाँ बैठा है, जो पिछली रात चुराये धन को गाँव के बाहर बह रही नदी के किनारे गाड़कर अभी-अभी यहाँ सत्संग में आकर बैठा है। संत प्रवर भीड़ में बैठे उस चोर को पहचान गए, पर उन्हें उस पर क्रोध नहीं आया; बल्कि वे उसे भी प्रेम व करुणामयी दृष्टि से देखते रहे।

संत प्रवर ने मन-ही-मन ईश्वर से प्रार्थना की—"हे प्रभु! आप तो करुणानिधान हैं। आप तो अनाथों के नाथ हैं। आप तो किसी पर भी अकारण कृपा करने वाले हैं। इसलिए हे प्रभु! सबके साथ-साथ यहाँ बैठे इस चोर का भी उद्धार हो, कल्याण हो और यह बुराई के रास्ते का त्याग कर आपके बताए मार्ग पर चल सके। ऐसी कृपा, करुणा, प्रेरणा इसे प्रदान करने की कृपा करें। कुछ क्षण आँखें मूँदकर प्रार्थना के भाव में वे यथास्थान सुस्थिर खड़े रहे।

सबके कल्याण के साथ-साथ उस चोर के कल्याण की मंगल-भावना के साथ संत प्रवर ने अपने अमृतमय उपदेश प्रारंभ करते हुए कहा—"देवियो, सज्जनो! मानव जीवन की सार्थकता सुख, शांति व आनंद पाने में ही है। इसमें कोई दो राय नहीं कि जीवन में भौतिक समृद्धि भी जरूरी है, पर यह समृद्धि भी ईमानदारी व उचित तरीके से ही प्राप्त की जानी चाहिए; क्योंकि बेईमानी, बुरे कर्म व अनुचित तरीके से प्राप्त भौतिक संसाधन हमें सुख, शांति व समृद्धि प्रदान नहीं कर सकते। यदि ऐसा हो सका होता तो बुरे कर्म, अनुचित कर्म, अशुभ कर्म करने वाले लोगों के जीवन में सदैव शांति होती, सुख होता, समृद्धि होती, पर ऐसा होता नहीं है; क्योंकि यह प्रकृति के नियम के अनुकूल नहीं। अनुचित तरीके से प्राप्त धन हमें दुःखी व दरिद्र बनाता है। वहीं ईमानदारी से अर्जित धन से हमें आत्मसंतोष होता है। हमारे जीवन में सचमुच सुख, शांति व समृद्धि आती है।

वे सबको समझाते हुए आगे बोले—"हमें हार्दिक प्रसन्नता होती है, पर भौतिक सुख, शांति, समृद्धि ही पर्याप्त नहीं। इससे कहीं अधिक मूल्यवान व ऊँची संपत्ति भी है, जिसे प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त करने का प्रयास-पुरुषार्थ करना चाहिए और वह संपदा है भगवत्कृपा, भगवद्दर्शन, परम आनंद, ब्रह्मानंद। यह मानव जीवन का परम लक्ष्य भी है, जिसे प्राप्त करने में ही मानव जीवन की सार्थकता है अन्यथा अपने व परिवार के पेट के लिए तो पशु-पक्षी भी जीवन जीते ही हैं।

"बड़े भाग्यशाली हैं वे लोग, जो अपने उत्तम व पुण्य संस्कारों के कारण भगवत्प्रेमी हैं, जो भगवद्भजन, भगवत्कथा, भगवद्ध्यान में रस लेते हैं और अपनी आत्मा में

अलौकिक आनंद पाते हैं और अपने अहर्निश प्रयास से अपने जीवन के परमलक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

"ऐसे उत्तम संस्कारसंपन्न लोगों को अपनी साधना तीव्रतर करते जाना चाहिए, जिससे वे शीघ्र ही भगवत्प्राप्ति कर सकें, पर कुछ ऐसे भी हैं जिनमें भगवान को पाने की चाहत तो है, पर संकल्पबल, आत्मबल कमजोर होने के कारण ऐसा कर नहीं पाते। वे भगवद्भजन करते हैं, पर उसमें उनका मन लगता नहीं।

"वे ध्यान में बैठते हैं, पर मन की चंचलता ध्यान में डूबने नहीं देती है। उनके लिए यही उचित है कि वे बारंबार अपने हृदय में भगवान के सगुण-साकार या निर्गुण-निराकार स्वरूप का ध्यान करते रहें, उनकी भक्ति करते रहें, स्वाध्याय करते रहें। संतों, साधकों, योगियों के जीवन वृत्तांत, आत्मकथा को पढ़कर उनके जीवन से प्रेरणा लेते रहें और अपने संकल्प को बलवान बनाते रहें, जिससे कि वे सांसारिक बंधनों व आसक्तियों का परित्याग कर भगवन्मय जीवन जी सकें और अपनी साधना में निरंतरता बनाए रखकर भगवत्कृपा प्राप्त कर सकें।

"वैसे लोग जिन्हें भगवद्भजन, सुमिरन, ध्यान में बिलकुल भी रुचि नहीं—उलटे वे घोर तामसिक प्रवृत्ति के होने के कारण स्वभावतः ही बुरे कर्मों की ओर आकर्षित होते हैं और उनमें लिप्त रहते हैं—ऐसे लोगों के लिए यही उचित है कि वे सत्संग करें, साधु व बुद्धपुरुषों का यथासंभव सान्निध्य प्राप्त करें। दूसरों का बुरा करने के बजाय उनका भला करने की सोचें। सदैव दूसरों की सेवा, सहायता करें। स्वयं को बुराइयों से बचाने के लिए भगवान से आकुल पुकार करें, प्रार्थना करें।

"भगवान की कृपा पाने के लिए भगवद्भजन, सुमिरन करें। ऐसा करने से बुरे-से-बुरे व्यक्ति का भी चित्त धुलने लगता है। उसकी तामसिक प्रवृत्ति क्रमशः मिटने लगती है। उसका चिंतन परिष्कृत होने लगता है। फलस्वरूप बुरे कर्मों की ओर से उसका आकर्षण भी समाप्त होने लगता है। उसके भीतर उत्तम व शुभ संस्कार उत्पन्न होने के कारण वह शुभ कर्म, पुण्य कर्म, भगवत्प्रेम की ओर आकर्षित होने लगता है व आध्यात्मिक पथ उसे अधिक प्रीतिकर लगने लगता है।"

संत प्रवर फिर बोले—"बुरे-से-बुरा व्यक्ति भी सच्चे हृदय से यदि भगवान की शरण में चला जाता है तो भगवान उसे उसके संपूर्ण पापों से मुक्त कर देते हैं। गीता में भगवान ने स्वयं कहा है—

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

संपूर्ण धर्मों को अर्थात संपूर्ण कर्त्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।"

संत प्रवर के मुख से शरणागतवत्सल भगवान का ऐसा आश्वासन सुनते ही सत्संग में बैठे बुरे कर्मों में लिप्त रहने वाले लोगों को ऐसा लगा मानो किसी ने उनके हृदय को झकझोरकर रख दिया हो। संत प्रवर द्वारा उच्चारित भगवान की यह वाणी वहाँ बैठे चोर के हृदय में उतर गई। उसे अपने किए का घोर पश्चात्ताप हुआ। ग्लानि के मारे उसका हृदय फटा जा रहा था। उसकी आँखों से पश्चात्ताप के आँसू बहे जा रहे थे।

तभी संत प्रवर ने गीता के एक और श्लोक को उद्धृत किया—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

अर्थात यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है अर्थात उसने यह भली भाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।

गीता के एक अन्य श्लोक का उद्धरण देते हुए संत प्रवर ने कहा—

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

अर्थात वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शांति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता। यह सुनकर वह चोर मन-ही-मन बिलख-बिलखकर रोने लगा। उसे अपने जीवन में किए हुए सभी कुकर्म स्मरण हो आए। वह अपने किए पर पश्चात्ताप कर यह सोचने लगा कि मुझ जैसे नीच, पापी के लिए भी भगवान के हृदय में, संत के हृदय में कितनी दया है, कितनी करुणा है।

तब संत प्रवर ने अत्यंत करुणा भरी वाणी में वाल्मीकि रामायण (6.18.33) के उस श्लोक को उद्धृत किया, जिसमें भगवान ने कहा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

अर्थात जो एक बार भी मेरी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ'—ऐसा कहकर रक्षा की याचना करता है, उसे मैं संपूर्ण प्राणियों से अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है। संत प्रवर की यह वाणी मानो उस चोर की अंतरात्मा में उतर आई। संत प्रवर ने अपनी वाणी यहीं समाप्त कर दी। सभी लोग नए संकल्प, नई जीवन-दृष्टि, नई प्रेरणा लेकर संत प्रवर के चरणों में नतमस्तक हुए और अपने-अपने घरों को प्रस्थान कर गए, पर वह चोर अभी भी वहाँ अकेला बैठकर बिलख-बिलखकर रो रहा था।

संत प्रवर आसन से उतर स्वयं उसके पास पहुँचे। वह चोर संत प्रवर के चरणों से लिपटकर और भी अधिक फूट-फूटकर रोने लगा, विलाप करने लगा और अपने कुकृत्यों पर पश्चात्ताप करने लगा। वह संत प्रवर को अपने सभी कुकृत्यों के विषय में बताने लगा। संत करुणादास ने उसे उठाकर अपने गले से लगा लिया। स्वयं उसके आँसू पोंछे और बोले—"वत्स! तू चिंता न कर। आँखों से बहते हुए पश्चात्ताप और ग्लानि के तुम्हारे आँसुओं को देखकर मैं समझ चुका हूँ कि अब तुम वह नहीं हो, जो सत्संग में आने से पूर्व थे। चलो, तुम हमारे साथ चलो। मैं तुम्हारे उद्धार का मार्ग अवश्य प्रशस्त करूँगा। वह व्यक्ति संत प्रवर के साथ चल पड़ा। उनके सान्निध्य में रहकर अनवरत साधना करने लगा और अंततः निष्पाप होकर भगवत्कृपा का अधिकारी बना। ❑

एक लकड़हारा जंगल में लकड़ी काटकर व उन्हें बेचकर किसी प्रकार अपना गुजारा किया करता था। एक दिन किसी साधु ने संकेत रूप में एक सूत्र दिया—"बच्चा! आगे बढ़ जा।" साधु के कहे अनुसार वह लकड़हारा जब कुछ आगे बढ़ा तो अच्छी किस्म की मोटी लकड़ियों को पाकर अत्यंत प्रसन्न हुआ और बाजार में उन्हें बेचकर उसने पहले से अधिक पैसा कमाया। पुनः आगे बढ़ने पर उसे एक चंदन का वन दिखाई पड़ा। जिसे देखकर उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। वह लकड़हारा चंदन की लकड़ी बेच मालामाल हो गया। मेहनतकश लकड़हारे के मन में साधु का दिया सूत्र गूँज रहा था और आगे बढ़कर उसने क्रमशः ताँबे, चाँदी, सोने और हीरे की खानें पाईं।

साधु के दिए सूत्र ने उस लकड़हारे को धनवान बना दिया। धर्म के मार्ग में भी ठीक इसी प्रकार उन्नति होती है। आत्मिक क्षेत्र में साधक को कभी भी रुकना नहीं चाहिए। उस साधु ने जो निरंतर आगे बढ़ने की शिक्षा दी थी, उसका मर्म था—"साधक! रुक मत, चलता जा; तब तक, जब तक गंतव्य तक न पहुँच जाए। अपने अंदर झाँक व तब तक आत्मावलोकन, विश्लेषण, मनन कर; जब तक प्रगति की राह न दिखाई पड़े। थोड़ी-बहुत ज्योति आदि का दर्शन कर यह मत समझ कि तुझे सिद्धि मिल गई, मोक्ष प्राप्त हो गया।" सतत अध्यवसाय से ही परमात्मलक्ष्य की प्राप्ति संभव है।

ऐतिहासिक घटनाक्रमों के प्रमाण हैं पुराण

पुराण धर्मसंबंधी आख्यान ग्रंथ हैं। ये स्मृतियों में आते हैं। पुराण का शाब्दिक अर्थ है—प्राचीन या पुराना। पुराण भारतीय जीवनशैली का आधार हैं। प्राचीन हिंदू पौराणिक ग्रंथ मात्र दंतकथाओं तथा धार्मिक आख्यानों के अलग-अलग समय पर लिखे ग्रंथ ही नहीं हैं, बल्कि उनमें ऐतिहासिक घटनाक्रमों के भी साक्ष्य हैं। हाल ही में भारत के साथ-साथ पश्चिम के अनेक विद्वानों ने शोध के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि पुराणों में देश के पुरातन इतिहास के ही नहीं, बल्कि आधी से अधिक दुनिया में फैले जिसे बृहत्तर भारत कहा जा सकता है, उसके इतिहास के बीज विद्यमान हैं।

यदि हम आधुनिक चिंतन का दावा करने वाले किसी बुद्धिजीवी के सामने पुराणों की ऐतिहासिकता का उल्लेख करें तो वह दशकों के दुष्प्रचार के कारण हमारा उपहास कर सकता है। पहले अँगरेज और फिर कुछ इतिहासकार यही कहते रहे कि हिंदू कालक्रम के बारे में लापरवाह थे और किंवदंतियों को ऐतिहासिक जामा पहनाने में पारंगत थे। आठवीं शताब्दी के पहले का इतिहास अर्थात इसलाम के आगमन के पहले इस देश के इतिहास का सारा-का-सारा कालखंड महत्त्वहीन था, जिसमें इतिहासकारों की हठधर्मिता के कारणवश उसका आदि-अंत कुछ स्पष्ट न था।

यह एक त्रासदी है कि अनेक कथित बुद्धिजीवी पुराणों को सतही नजर से देखते हुए उन्हें सिर्फ धार्मिक कहकर केवल आलंकारिक आख्यानों या पुरानी गाथाओं और किंवदंतियों का संकलन मात्र मानते हैं। आज जब फिर से उनके व्यवस्थित अध्ययन की प्रक्रिया विदेशी विद्वान भी करने लगे हैं, तब हम भी अब मान रहे हैं कि पौराणिक ग्रंथ हमारे देश के मात्र धार्मिक और आध्यात्मिक विकास के बहुमूल्य दस्तावेज होने के अलावा हमारी पुरानी परंपराओं के प्राण हैं। उनकी रचना का कालक्रम अलग-अलग हो सकता है, पर वे सब ज्ञान की उसी एक रज्जु से बँधे हैं, जिससे तत्कालीन बृहत्तर भारत का मानचित्र भी खींचा जा सकता है।

यद्यपि पुराणों का उद्देश्य भौगोलिक जानकारी देना नहीं था, पर उनके विस्तृत वर्णनों में उस समय के विश्व के बारे में हमारे पूर्वजों को कितना ज्ञान था, यह सहज ही अनुभव हो जाता है। भारत की भौगोलिक एकता हजारों साल पुरानी है—इसका साक्ष्य पुराणों में ही मिलता है। उस समय के स्थानीय महत्त्व के ज्ञान के चित्र मात्र हिमालय, भरतखंड अथवा जंबूद्वीप अथवा सप्तसिंधु के संदर्भों में नहीं मिलते हैं, बल्कि दक्षिण-पूर्वी एशिया, उत्तरापथ, यूरोप एवं अफ्रीका के कुछ भू-भागों के बारे में भी उनमें संदर्भ आए हैं।

ब्रह्मपुराण में उड़ीसा के क्षेत्र; अग्नि में गया; ब्रह्मवैवर्त में वृंदावन, गोकुल क्षेत्र; स्कंद में काशी, उड़ीसा, नर्मदा के तीर्थ तथा वामन पुराण में आंध्र का भौगोलिक विवरण है। पुराणों में पृथ्वी के उस भू-भाग का भी वर्णन है, जिसका ज्ञान विदेशी व्यापार, यात्रियों के आवागमन, विद्वानों के भ्रमण के मंतव्य से प्राचीन भारतीयों को हो चुका था। जहाँ ऋग्वेद में केवल सिंधु, सरस्वती और सरयूसहित लगभग 21 नदियों एवं अधिकतर हिमालय तथा मंजुवन पर्वतों का उल्लेख है, वहाँ वेद से सूत्रग्रंथों तक आते-आते 14 नदियों तथा महामेरू और विंध्य पर्वत का भी नाम आया है।

रामायण में उत्तर भारत का अच्छा वर्णन है। महाभारत के भीष्म पर्व, आदि पर्व तथा सभा पर्व में बृहत्तर भारत के भी संदर्भ हैं। बात यह भी है कि दूर-दराज से जुड़ी अनेक प्राचीन गाथाओं का विभिन्न पुराणों से वर्णित प्रसंगों में कहीं विरोधाभास या अंतर्विरोध भी नहीं है। इसीलिए उन्हें जितनी गंभीरता से पढ़ा जाता है, उससे हमारी सभ्यता-संस्कृति के नए-नए पक्ष ही उजागर होते हैं। पुराणों के समग्र अध्ययन के बाद पश्चिमी विद्वानों ने इन्हें प्राचीन भारत में नैतिक व सामाजिक विचारों के क्रमबद्ध विकास संबंधी बहुमूल्य दस्तावेज की संज्ञा दी है, जो स्थान सापेक्ष भी है और काल सापेक्ष भी। राजाओं और सम्राटों के राजवंश के इतिहास भी अलग-अलग पुराणों में दिए तारतम्य के अनुकूल हैं।

कई पुराण तो भविष्यसूचक भी हैं और उनकी कई भविष्यवाणियाँ ऐतिहासिक सत्यों से मेल भी खाती हैं। एक अमेरिकी शोध संस्थान ने स्पष्ट निष्कर्ष निकाला है कि हिंदू और बौद्ध कथाओं के अंतर्निहित संबंधों को समझने के लिए पुराणों का अध्ययन आवश्यक है। वर्तमान संदर्भ में उन्हें मिलाया जाए तो उनमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाएँ सत्यापित की जा सकती हैं। पुराणों में ऐसे अनेक वृत्तांत हैं, जो ईसा की पाँचवीं सदी तक के राजवंशों का सही उल्लेख करते हैं। देश के प्राचीन व पारंपरिक इतिहास को समझने के लिए वे अपरिहार्य हैं। देश के अनेक भागों, जैसे—नागार्जुन-कोंडा, पुरुषपुर, पुरंदर, सरस्वती आदि के जिक्र से पुराणों की सार्वदेशिकता सांस्कृतिक निरंतरता सिद्ध होती है।

विष्णु पुराण में मौर्य राजवंश और वायु पुराण में गुप्तवंश की भविष्यवाणी है। इनमें कुछ उन राजवंशों का भी उल्लेख है, जो महाभारतकाल के कौरव-पांडव के 2000 वर्ष पहले हुए थे। युद्ध के पश्चात सिर्फ तीन राजवंशों का जिक्र है—इक्ष्वाकु, पौरव और मगध। अर्जुन की छठी पीढ़ी के अधिसिंह कृष्ण तक का पुराणों में उल्लेख है। गुप्त युग आने के साथ-साथ बाद के राजवंशों को अभिलेखित नहीं किया गया है। बुद्ध के आगमन के पूर्व के राजनीतिक इतिहास में अवश्य कुछ कड़ियाँ लुप्त रह गई हैं। प्राचीन भारतीय कालक्रमों को निश्चित करने के लिए शोध को आगे बढ़ाना जरूरी है। परीक्षित की मृत्यु के बाद का सिंहासनारोहण ईसा पूर्व 1015 में हुआ या वह वर्ष 1050 था, इसके बारे में मतभेद है।

यह कहा जाता है कि नंद वंश और अंध्र वंश में 836 वर्षों का अंतराल था। इस आधार पर सम्राट नंद का काल 401 ईसा पूर्व कहा जा सकता है। राजनीतिक इतिहास के अलावा पुराण ग्रंथ भारत के प्राचीनकाल की आर्थिक, सामाजिक स्थिति का चित्र मुसलमानों के आगमन के पहले तक बड़ी ईमानदारी से प्रस्तुत करते हैं। मत्स्य पुराण से राजतंत्र उत्तराधिकार, सम्राट के अधिकार व दायित्वों का विवरण तो मिलता ही है; उसके आमात्य मंत्री व अधिकारियों के कार्य-विभाजन का भी ज्ञान प्राप्त होता है। अमेरिका के बर्कले स्थित केलिफोर्निया विश्वविद्यालय में संस्कृत के एक प्रोफेसर जो प्राचीन भारतीय इतिहास, पौराणिक आख्यानों व दंतकथाओं के विशेषज्ञ हैं—उन्होंने रामायण की कथाओं पर भी अनेक खोजें की हैं।

वे रावण के बारे में कहते हैं कि उसका केवल एक सिर था और अन्य नौ सिर नौ चमकीले देदीप्यमान बड़े रत्नों को वह गले में पहनता था। दूसरी कुछ अंतर्कथाओं की व्याख्या भी उन्होंने अपने तरह से की है, जो विविध स्रोतों पर निर्भर है। संजीवनी बूटी लाने के लिए हनुमान कितनी गति से उड़े थे या कुंभकरण वस्तुत: कितनी लंबी अवधि तक सोया, उस पर भी उनकी टिप्पणियाँ रोचक हैं। उन्होंने प्राचीन विद्वान नागोजी भट्ट, गोविंदराज, महेश्वरतीर्थ, सत्यतीर्थ व माधव योगेंद्र को उद्धृत करते हुए इन प्रकरणों की भावूपर्ण व्याख्या की है। उन्होंने प्राचीन टीकाओं से उद्धृत करते हुए कहा कि चंद्र पंचांग की गणना के आधार पर बताया जा सकता है कि कुंभकर्ण वध से लेकर मेघनाद के अंत तक कितना समय लगा होगा।

रावण से युद्ध में एक रात लगी थी या सात रातें--इस पर भी उन्होंने खोज की है। हिमालय के महोदय पर्वत पर हनुमान को उड़कर जाने और बूटी लाकर लंका लौटने में कितना समय लगा? उन्होंने समय की अवधि के वर्णनों से अनुमान लगाया कि हनुमान पहले पर्वत को उठाकर लाए थे, फिर उड़कर उसको वहीं रख आए। इसके लिए उन्हें 660 किलोमीटर प्रतिघंटा की गति से उड़ना पड़ा था। वे भारतीय संस्कृति व इतिहास से अत्यंत अभिभूत हैं। जब वे न्यूयार्क की कोलंबिया यूनिवर्सिटी से 20 वर्ष की अवस्था में जुड़े थे, तभी से वे भारतीय पौराणिक व प्राचीन गाथाओं को पढ़ते रहे हैं। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि पावन अनुभूति की तीव्रता और विशालता प्राचीन भारतीय आख्यानों की सबसे बड़ी शक्ति है।

स्विटजरलैंड में रहने वाले चर्चित विद्वान एरिक वान डेनिके मानते हैं कि अनेक प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में विश्व के इतिहास के अनेक संदर्भ समाविष्ट हैं। जब सन् 1969 में उन्होंने अपने ग्रंथ **'चेरियट्स ऑफ गॉड्स'** में साक्ष्य प्रस्तुत किए कि हजारों साल पहले धरती पर दूसरे लोकों से मानव आए थे, तब लोगों में उत्सुकता बढ़ी। अपनी भारतयात्रा के दौरान उन्होंने जमशेदपुर के निकट स्वर्णरेखा नदी के पास घाटशिला की एक पहाड़ी का चित्र भी प्रकाशित किया था जहाँ कहा जाता है कि पांडवों के उस रथ के पहिए के निशान बहुत दूर तक हैं, जब वह उड़कर आकाश में चला गया था।

भारतीय आख्यानों को वे दुनिया के प्राचीनतम साक्ष्य मानते थे। उन्होंने अनेक देशों की प्राचीन गाथाओं, स्मृतियों से संबंधित दंतकथाओं एवं कथित रहस्यमय शक्तियों का गंभीरता से अध्ययन कर रहस्यों की खोज की। चाहे वे मिस्र के पिरामिड हों या प्राचीन भारतीय पौराणिक आख्यान हों। पाश्चात्य इतिहासकार डेनिकन का मानना है कि अधिकांश दंतकथाओं व पौराणिक आख्यानों के पीछे कोई-न-कोई सत्य छिपा होता है। प्रसिद्ध यात्रा वृत्तांत लेखक हचू और कौलीन गैंटजर को दिए एक साक्षात्कार में डेनिकन ने कहा कि भारतीय पुराण निस्संदेह दुनिया में सबसे पुराने एवं अनमोल दस्तावेज हैं। इसका कारण यह भी है कि चाहे महाभारत हो या रामायण या पुराण उनमें अन्य लोकों में बसे नगरों तक का वर्णन है।

महाभारत में अर्जुन की इंद्रलोक की यात्रा का भी वर्णन है। डेनिकन का यह भी कहना है कि चाहे 'ओल्ड टेस्टामेन्ट' हो या बाइबिल के पुराने आख्यान, हर धर्मग्रंथ में प्रलय के वर्णन भारतीय महाजलप्लावन आख्यानों से लिए गए हैं। उनके अनुसार—भारतीय सभ्यता हजारों वर्ष प्राचीन है व अपने समय में दुनिया की सबसे उच्च और प्रगतिशील सभ्यता सिंधु घाटी की नागरी सभ्यता थी। वे कहते हैं कि आज भी दुनिया भर में फैले प्राचीनतम आख्यानों की जड़ों में भारतीय धार्मिक ग्रंथ रहे हैं। पुराण मात्र धर्मग्रंथ ही नहीं हैं, बल्कि इनमें इतिहास, भूगोल, दर्शन, गणित, कला आदि अनगिनत विषयों का समावेश है। अत: इनके समुचित अध्ययन एवं अन्वेषण के माध्यम से ही इसकी बिखरी हुए कड़ियों को पुन: जोड़ा जा सकता है। ❑

डॉक्टर मार्क कैनन कैंसर विशेषज्ञ थे। एक बार वे किसी स्वास्थ्य सम्मेलन में भाग लेने जा रहे थे, किंतु उड़ान के कुछ समय पहले ही विमान में तकनीकी खराबी आ गई। दूसरा विमान कई घंटे लेट था। इसलिए उन्होंने एक टैक्सी किराये पर ली। टैक्सी मिली, पर बिना ड्राइवर के। अत: उन्होंने स्वयं ही टैक्सी चलाने का निर्णय लिया। यात्रा के दौरान ही तेज आँधी-तूफान शुरू हो गया और भटकते हुए वे एक पुराने से मकान में जा पहुँचे। वहाँ उपस्थित गृहस्वामिनी को उन्होंने अपनी स्थिति बताई तो वह उन्हें भीतर ले गई और आतिथ्यस्वरूप उसने उन्हें कुछ खाने को भी दिया। उस स्त्री द्वारा भोजन से पूर्व प्रार्थना करने के आग्रह पर वे बोले—"मैं इसमें विश्वास नहीं करता।" उस स्त्री की भावभरी प्रार्थना को देखकर डॉक्टर ने उससे पूछा—"क्या आपको लगता है कि भगवान आपकी प्रार्थनाएँ सुनेंगे?" उस स्त्री ने उदास मुस्कराहट के साथ कहा—"डॉक्टर साहब, यह मेरा बेटा है। इसे कैंसर है और जिसका इलाज मार्क कैनन नाम के एक डॉक्टर ही कर सकते हैं, लेकिन मेरे पास इतने पैसे नहीं हैं कि मैं उनके पास जा सकूँ। मात्र विश्वास है कि भगवान कोई रास्ता निकाल ही देंगे।" डॉक्टर उस स्त्री द्वारा की गई सच्ची प्रार्थना और घटित हुए उस संयोग को देखकर अवाक् रह गए और उन्होंने उस बच्चे का इलाज मुफ्त में कर दिया। इस घटना ने स्वयं उनके जीवन को भी रूपांतरित कर दिया।

भगवान महावीर के अमृत संदेश

भगवान महावीर के तप की सुगंध चहुँओर फैलने लगी थी। भगवान महावीर तप की अग्नि में तपकर कुंदन बन चमकने लगे थे। वे ज्ञानरूप हो गए थे। वे सत्यरूप हो गए थे। अत: उनके सत्योपदेश को लोग मंत्रमुग्ध हो सुना करते थे। उनकी वाणी से ज्ञान व सत्य स्वत: ही प्रवाहित होने लगे थे। वे जहाँ भी जाते, वहाँ चारों ओर शांतभाव से लोग बैठ जाते और वे मिथ्या धारणाओं में भटकती जनता के समक्ष उस सत्य को प्रकट करते, जिसे उन्होंने ज्ञानरूप होकर जाना था।

उनकी वाणी में इतनी समता थी कि वे प्राणिमात्र को ही नहीं, बल्कि जड़-चेतन सबको समान दृष्टि से देखा करते, सबको नम्रता का, विनय का पाठ पढ़ाते। अपनी धर्मसभाओं में वे लोगों की आध्यात्मिक जिज्ञासाओं को पूर्ण करते और उचित समाधान बताते। वे सभा में आए विद्वानों के मन में वेदमंत्रों, वेदवाक्यों को लेकर अनेक प्रकार की शंकाएँ दूर किया करते। वे वेदमंत्रों की यथार्थ व्याख्या करके उनकी शंकाओं को दूर करते।

महावीर स्वयं ही आगंतुक की शंका बतलाते और स्वयं ही उसका समाधान कर दिया करते थे। उनके अमृत संदेश को सुनकर लोगों का जीवन बदलने लगा। कोटिश: लोग उनके शिष्य हो गए, साधु हो गए। समाज में व्याप्त तत्कालीन धारणाओं के अनुसार नारी मोक्ष की अधिकारिणी न थी, पर समतामूर्ति महावीर ने नारी-स्वतंत्रता का समर्थन ही नहीं किया, अपितु यह प्रमाणित भी कर दिया कि नारी भी मोक्षाधिकार रखती है। उन्होंने स्पष्ट किया कि आत्मोद्धार के लिए न तो नारीत्व बाधक है और न ही पुरुषत्व साधक है। आत्मोद्धार के लिए संयमशीलता की आवश्यकता है, सम्यक ज्ञान की आवश्यकता है और सम्यक दर्शन का होना अनिवार्य है। साथ ही सम्यक चरित्र मोक्ष में साधक है, सहायक है। इसके साथ ही भगवान महावीर गृहस्थ जीवन को साधना में बाधक नहीं मानते थे। हाँ! उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि तीव्र वैराग्योदय होने पर ही पुरुष साधु बने और तीव्र वैराग्योदय होने पर नारी साध्वी बने।

इस प्रकार उन्होंने धार्मिक जीवन की सुव्यवस्था, मर्यादा और समुन्नति के लिए साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध श्रीसंघ की स्थापना की। महावीर ने जातिविहीन समाज की रचना पर भी विशेष बल दिया। उनका मानना था कि जाति, वर्गभेद, छुआछूत आदि समाज के लिए शुभ नहीं, हितकर नहीं। उन्होंने घोषणा की कि मानवमात्र की जाति एक है। अत: जन्म के आधार पर नहीं, गुणों के आधार पर समाज की व्यवस्था होनी चाहिए।

उनके शिष्यों में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न गौतम स्वामी का जो आदर था, वही आदर इतर जाति में उत्पन्न हरिकेशी का था। उन्होंने धर्म के नाम पर, यज्ञ के नाम पर फैले पाखंड, अंधविश्वास व मूढ़मान्यताओं का भी खुलकर विरोध किया। उन्होंने कहा—"यज्ञ बुरे नहीं, परंतु यज्ञों के नाम पर होने वाली हिंसा बुरी है। यह हिंसा मानव जाति के लिए हानिकर है और समाज को हिंसक बनाने वाली है।"

अपने जीवन को ईश्वर की दया एवं क्रोध पर अवलंबित मानकर स्वयं को आलसी और परावलंबी बनाए हुए लोगों के लिए उन्होंने कहा—"तुम्हारा जीवन तुम्हारे कर्मों पर अवलंबित है, ईश्वर पर नहीं। तुम्हारे सुख-दु:ख तुम्हारे कर्मों पर अवलंबित हैं, ईश्वर पर नहीं। मनुष्य स्वयं ईश्वर है। उसे '**अहं ब्रह्मास्मि**' मैं ही ब्रह्म हूँ—इस वाक्य को अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखाना चाहिए।" उन्होंने कहा—"अपनी आत्मशक्ति को देखो। अपने महान स्वरूप को पहचानो और अपने महान परमरूप की प्राप्ति के लिए उद्यम करो, पुरुषार्थ करो।"

सचमुच महावीर के उपदेश मानवमात्र के कल्याण के लिए अमृततुल्य हैं, बड़े ही प्रेरणादायी हैं। उनके उपदेशों को अपने जीवन में उतारकर कोई भी मनुष्य स्वयं को सुख और सौभाग्य से सराबोर कर सकता है। अपने जीवन को सुंदर और सफल बना सकता है। एक समग्र जीवन-दृष्टि, आध्यात्मिक दृष्टि विकसित कर सकता है। ❑

भगवान महावीर के अमृत संदेश

भगवान महावीर के तप की सुगंध चहुँओर फैलने लगी थी। भगवान महावीर तप की अग्नि में तपकर कुंदन बन चमकने लगे थे। वे ज्ञानरूप हो गए थे। वे सत्यरूप हो गए थे। अत: उनके सत्योपदेश को लोग मंत्रमुग्ध हो सुना करते थे। उनकी वाणी से ज्ञान व सत्य स्वत: ही प्रवाहित होने लगे थे। वे जहाँ भी जाते, वहाँ चारों ओर शांतभाव से लोग बैठ जाते और वे मिथ्या धारणाओं में भटकती जनता के समक्ष उस सत्य को प्रकट करते, जिसे उन्होंने ज्ञानरूप होकर जाना था।

उनकी वाणी में इतनी समता थी कि वे प्राणिमात्र को ही नहीं, बल्कि जड़-चेतन सबको समान दृष्टि से देखा करते, सबको नम्रता का, विनय का पाठ पढ़ाते। अपनी धर्मसभाओं में वे लोगों की आध्यात्मिक जिज्ञासाओं को पूर्ण करते और उचित समाधान बताते। वे सभा में आए विद्वानों के मन में वेदमंत्रों, वेदवाक्यों को लेकर अनेक प्रकार की शंकाएँ दूर किया करते। वे वेदमंत्रों की यथार्थ व्याख्या करके उनकी शंकाओं को दूर करते।

महावीर स्वयं ही आगंतुक की शंका बतलाते और स्वयं ही उसका समाधान कर दिया करते थे। उनके अमृत संदेश को सुनकर लोगों का जीवन बदलने लगा। कोटिश: लोग उनके शिष्य हो गए, साधु हो गए। समाज में व्याप्त तत्कालीन धारणाओं के अनुसार नारी मोक्ष की अधिकारिणी न थी, पर समतामूर्ति महावीर ने नारी-स्वतंत्रता का समर्थन ही नहीं किया, अपितु यह प्रमाणित भी कर दिया कि नारी भी मोक्षाधिकार रखती है। उन्होंने स्पष्ट किया कि आत्मोद्धार के लिए न तो नारीत्व बाधक है और न ही पुरुषत्व साधक है। आत्मोद्धार के लिए संयमशीलता की आवश्यकता है, सम्यक ज्ञान की आवश्यकता है और सम्यक दर्शन का होना अनिवार्य है। साथ ही सम्यक चरित्र मोक्ष में साधक है, सहायक है। इसके साथ ही भगवान महावीर गृहस्थ जीवन को साधना में बाधक नहीं मानते थे। हाँ! उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि तीव्र वैराग्योदय होने पर ही पुरुष साधु बने और तीव्र वैराग्योदय होने पर नारी साध्वी बने।

इस प्रकार उन्होंने धार्मिक जीवन की सुव्यवस्था, मर्यादा और समुन्नति के लिए साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध श्रीसंघ की स्थापना की। महावीर ने जातिविहीन समाज की रचना पर भी विशेष बल दिया। उनका मानना था कि जाति, वर्गभेद, छुआछूत आदि समाज के लिए शुभ नहीं, हितकर नहीं। उन्होंने घोषणा की कि मानवमात्र की जाति एक है। अत: जन्म के आधार पर नहीं, गुणों के आधार पर समाज की व्यवस्था होनी चाहिए।

उनके शिष्यों में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न गौतम स्वामी का जो आदर था, वही आदर इतर जाति में उत्पन्न हरिकेशी का था। उन्होंने धर्म के नाम पर, यज्ञ के नाम पर फैले पाखंड, अंधविश्वास व मूढ़मान्यताओं का भी खुलकर विरोध किया। उन्होंने कहा—"यज्ञ बुरे नहीं, परंतु यज्ञों के नाम पर होने वाली हिंसा बुरी है। यह हिंसा मानव जाति के लिए हानिकर है और समाज को हिंसक बनाने वाली है।"

अपने जीवन को ईश्वर की दया एवं क्रोध पर अवलंबित मानकर स्वयं को आलसी और परावलंबी बनाए हुए लोगों के लिए उन्होंने कहा—"तुम्हारा जीवन तुम्हारे कर्मों पर अवलंबित है, ईश्वर पर नहीं। तुम्हारे सुख-दु:ख तुम्हारे कर्मों पर अवलंबित हैं, ईश्वर पर नहीं। मनुष्य स्वयं ईश्वर है। उसे '**अहं ब्रह्मास्मि**' मैं ही ब्रह्म हूँ—इस वाक्य को अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखाना चाहिए।" उन्होंने कहा—"अपनी आत्मशक्ति को देखो। अपने महान स्वरूप को पहचानो और अपने महान परमरूप की प्राप्ति के लिए उद्यम करो, पुरुषार्थ करो।"

सचमुच महावीर के उपदेश मानवमात्र के कल्याण के लिए अमृततुल्य हैं, बड़े ही प्रेरणादायी हैं। उनके उपदेशों को अपने जीवन में उतारकर कोई भी मनुष्य स्वयं को सुख और सौभाग्य से सराबोर कर सकता है। अपने जीवन को सुंदर और सफल बना सकता है। एक समग्र जीवन-दृष्टि, आध्यात्मिक दृष्टि विकसित कर सकता है। ❑

चेतना की शिखर यात्रा – 236

जल-उपवास : प्रक्षालन प्रयोग

विगत अंक में आपने पढ़ा कि स्वर्ण जयंती की विशेष साधना के अंतर्गत हिमालय अवस्थित दिव्य सत्ताओं व गायत्री परिजनों के सम्मिलित साधनात्मक प्रयास से युग की कुंडलिनी को जगाने के कार्य का अधिकतम भाग संपन्न हो चुका था। इस सामूहिक साधना में बीते 8 महीनों में पूज्य गुरुदेव को संरक्षण दोष-परिमार्जन का स्पष्ट अनुभव न हो सका। अतः संरक्षण दोष- परिमार्जन की प्रक्रिया को पूर्ण करने के उद्देश्य से पूज्य गुरुदेव ने 24 दिवसीय जल-उपवास का संकल्प लिया। जिस हेतु पूज्यवर के जन्म-जन्मांतरों के अनन्य सहचर गायत्री परिजनों ने भी यथास्थान एवं यथाशक्ति लघु-अनुष्ठानों को संपन्न किया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

मिलने, दर्शन करने से ज्यादा भावभरा दृश्य उस मुख्य भवन के सामने निर्मित हो गया था, जहाँ से गुरुदेव के कक्ष की खिड़की दिखाई देती थी। मालूम था कि गुरुदेव परामर्श कक्ष में लेटे हुए हैं या एकांत साधना कर रहे हैं। फिर भी परिजनों की ललक ही थी कि उन्हें खिड़की से झाँकते हुए देखने की प्रतीक्षा करवा रही थी। जल-उपवास का प्रभाव गुरुदेव के स्थूलशरीर पर धीरे-धीरे दिखाई देने लगा था। कमजोरी बढ़ने लगी। आश्रम में विद्यमान चिकित्सक उनके रक्तचाप, हृदयगति और तापमान आदि की जाँच करते। उन्होंने पाया कि सब कुछ सामान्य है। वजन, रक्तचाप आदि पर 29 अक्टूबर तक कोई असर नहीं दिखाई दिया। चिकित्सकों को जो गायत्री परिवार के सदस्य और कार्यकर्त्ता भी थे आश्चर्य हुआ कि गुरुदेव कमजोर दिखाई दे रहे हैं ? इस बारे में उन्होंने पूछा भी तो गुरुदेव ने कहा—"सक्रियता में कमी आई है, इसलिए शरीर क्लांत दिखाई देता है, वस्तुतः है नहीं।"

सुनकर चिकित्सकों और कार्यकर्त्ताओं को संतोष हुआ। लेकिन उनमें एकाध ऐसे भी थे, जिनके दिमाग में कुछ और ही चल रहा था। गुरुदेव ने जल-उपवास के कारण बताते हुए पाँच अक्टूबर के अपने संदेश में कहा था कि इसका एक उद्देश्य साधना विज्ञान की सामयिक शोध और उसकी स्थापना करना है। साधनापद्धति का निर्धारण करते समय ध्यान रखना होगा कि वह हर साधक की मनःस्थिति, परिस्थिति स्तर और उद्देश्य के अनुरूप हो। गुरुदेव के उत्तर को सुनकर भी जिन कार्यकर्त्ताओं की भावुकता में कुछ और विचार आए थे वे गुरुदेव की ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे। गुरुदेव की दृष्टि भी उन पर पड़ी और वे बोले—"तुम जो सोच रहे हो, ऐसा नहीं है। सामयिक युग-साधना का निर्धारण तो हो चुका है बेटा।"

वे कार्यकर्त्ता देखते रह गए। मन में क्या चल रहा है, यह गुरुदेव ने पढ़ लिया था और तदनुरूप समाधान भी कर दिया था। गुरुदेव ने आगे कहा—"इन रहस्यों को ज्यादा लोग नहीं समझेंगे। उस युग-साधना को बल देने के लिए सारी प्रक्रिया चल रही है। कोई साधना उसकी पद्धति रच देने से जीवंत नहीं हो जाती। हजारों, लाखों साधक उसका अनुष्ठान करते हैं और सूक्ष्मजगत् में हलचल उत्पन्न की जाती है, तब उस विधान में प्राणों का संचार होता है" गुरुदेव के यह कहने के बाद वे कार्यकर्त्ता स्वर्णजयंती साधना के रूप में संपन्न हो रहे साधना अनुसंधान का हिसाब लगाने लगे। चौबीस, चौबीस लाख गायत्री मंत्र के चौबीस महापुरश्चरण प्रतिदिन, उतने ही या उससे भी ज्यादा साधकों द्वारा सम्मिलित रूप से प्रतिदिन की जाने वाली इतनी ही विपुल साधना, उन साधकों द्वारा व्रत, उपवास, तितिक्षा, तप और संयमित-अनुशासित जीवनचर्या इन सबके साथ हिसाब में नहीं आने वाला विस्तार, उसके बाद गुरुदेव द्वारा किया जा रहा अद्भुत विलक्षण, रहस्यपूर्ण जल-उपवास। रहस्यपूर्ण इसलिए कि गायत्री परिवार के सदस्यों में शायद ही किसी को इस अनुष्ठान का मर्म समझ आया हो। परिजन अपनी- अपनी तरह से भी व्याख्याएँ कर रहे थे।

साधकों का परिमार्जन

मुंबई से हरिद्वार आने वाली देहरादून एक्सप्रेस में बारह साधक रवाना हुए थे। वड़ोदरा, रतलाम और कोटा आते-आते उनकी संख्या 68 हो गई। सभी साधक अलग-अलग डिब्बों में थे और वे स्वर्ण जयंती साधना भी कर रहे थे। शाम के समय गाड़ी कोटा से पहले झालावाड़ के आस-पास पहुँची थी कि साधकों ने सायंकालीन उपासना आरंभ की। उस समय स्लीपर क्लास (तब थ्री टायर) में यात्रा कर रहे पाँच-सात परिजनों ने ही एकदूसरे को पहचाना। झालावाड़ में गाड़ी ज्यादा रुकती नहीं थी। गाड़ी में और भी परिजन थे। थोड़ी देर के स्टापेज की वजह से एकदूसरे के संपर्क में नहीं आए। दिल्ली में गाड़ी ठीक सूर्योदय के समय पहुँची, बल्कि कुछ ही पहले। गाड़ी यहाँ करीब चालीस मिनट रुकती थी। इस बीच कुछ साधकों ने फ्टाफ्ट नहाने का जुगाड़ कर लिया। और स्नान आदि से निवृत्त होकर प्रात:कालीन साधना के लिए बैठ गए। यहाँ पता चला कि मुंबई से दिल्ली तक चालीस-पचास साधक इकट्ठे हो गए हैं।

सुबह की साधना-उपासना के बाद ज्यादातर एक ही कंपार्टमेंट में आ गए और गुरुदेव के जल-उपवास के बारे में चर्चा करने लगे। इस चर्चा में जल-उपवास के कारणों पर भी बात चली और तीन-चार साधकों ने उन तत्त्वों के बारे में चिंता, उत्सुकता जगाई, जिसके कारण गुरुदेव क्षुब्ध हुए थे। उन तत्त्वों के आचरण स्खलन का परिष्कार करने के लिए वे प्रायश्चित कर रहे हैं। चर्चा ज्यादा चल नहीं सकी; क्योंकि दूसरे कार्यकर्त्ताओं ने तुरंत उत्तर दिया हममें से कौन है, जो शतप्रतिशत गुरुदेव की निर्धारित कसौटियों पर खरा उतरता हो। प्रत्येक में विचलन है। गुरुदेव उस विचलन दोष को दूर करने के लिए अभी यह साधना कर रहे हैं, ऐसा मानें।

इस विचलन के बारे में गुरुदेव ने कोई संकेत नहीं किया। यद्यपि आश्रम में और बाहर भी कई परिजनों को इस कार्यकर्त्ता के बारे में पता चल गया था। क्षेत्रों में प्रचार के लिए भेजी गई टोली का संरक्षक बनाकर भेजे गए उस कार्यकर्त्ता ने प्रसंगों में अनैतिक आचरण किया था। उस बारे में पता चला तो गुरुदेव ने उस परिजन से अपनी भूल मानने और प्रायश्चित करने के लिए कहा। कार्यकर्त्ता ने भूल मानने और प्रायश्चित करने के बजाय पलायन कर दिया। उस कार्यकर्त्ता के पलायन करने की सूचना पा गुरुदेव की पहली प्रतिक्रिया थी—"मेरे आस-पास कोई इतना कमजोर आदमी काम करता रहा, यह अकल्पनीय है। टीम का कोई सदस्य यदि चूक करता है तो उसके प्रमुख की जवाबदेही ज्यादा होती है। विचलन का प्रायश्चित किया जाना चाहिए। उस कार्यकर्त्ता में साहस नहीं है तो जवाबदेही बढ़ जाती है और यह जवाबदेही मेरी है। यह जल-उपवास उस विचलन के प्रायश्चित रूप में भी है।" गुरुदेव ने आगे कहा—"यह प्रायश्चित किसी सामाजिक और पारमार्थिक अभियान के प्रमुख की आचरण-मर्यादा के रूप में भी जाना जाएगा।"

गुरुदेव ने अपने जल-उपवास में जिन कारणों में एकाध किसी घटना का उल्लेख किया था, उसे परिजनों ने अपने से जुड़ी मान लिया और संतोष किया। इन परिजनों में अलीराजपुर से आए एक गंभीरमल अग्रवाल ने गुरुदेव से पूछने का मन बनाया। ऊपर जिन साधकों ने गुरुदेव के क्षोभ और प्रायश्चित का कारण स्वयं को बताया, उनमें गंभीरमल भी एक थे। शांतिकुंज पहुँचकर उन्होंने जैसे ही निश्चय किया लगा कि गुरुदेव सामने खड़े हैं। उसी कमरे में जहाँ वे ठहरे हैं और पिछली बार यहाँ आने पर उन्हें मंच पर जिस तरह खड़े हो जाते देखा था, उसी मुद्रा में। गंभीरमल उनसे पूछने का मन बना ही रहे थे कि गुरुदेव की ओर से प्रश्नों की झड़ी लग गई। तुम्हारे पास समय और साधनों की कितनी कमी है? नहीं है तो युग की पुकार सुनने और पूरा करने में उनका कितना अंश लगाते हो? इस बारे में आलस्य-प्रमाद बरतना और अपने दायित्व से कतराना कम बड़ा अपराध नहीं है क्या? इस सबके लिए मुझे प्रायश्चित करना पड़ रहा है।

मनस् क्षेत्र में यह उद्बोधन सुनने के बाद गंभीरमल ने गुरुदेव से कुछ पूछने का विचार छोड़ दिया। इस तरह के प्रश्न लेकर कई परिजन गुरुदेव के दर्शन करने गए, लेकिन पूछने की नौबत ही नहीं आई। ज्यादातर का समाधान उनकी आंतरिक चेतना में ही हो गया और जिन्हें इससे तसल्ली नहीं हुई। उन्हें अपने अभ्यंतर में हुए अनुभवों, दिखाई देने वाले दृश्यों से समाधान हो गया। जल-उपवास चौबीस दिन के लिए था। गुरुदेव ने इसे पंद्रह दिन में भी पूरा कर देने की बात कही थी। यह आश्वासन उन परिजनों का मन रखने या हिम्मत बँधाने के लिए था, जो गुरुदेव के स्वास्थ्य और शरीर के संबंध में चिंतित थे कि लंबे उपवास से कहीं वह गड़बड़ा न जाए। एक बार घोषणा कर दी गई, पंद्रह दिन राजी-खुशी बीत गए तो बीच में ही उपवास रोकने या स्थगित करने की कल्पना भी किसी के मन में नहीं उठी।

29 अक्टूबर को गुरुदेव ने माताजी के हाथों से नारियल का पानी लेकर उपवास पूरा किया। उस समय शांतिकुंज में हजारों कार्यकर्त्ता मौजूद थे। गुरुदेव अपने कक्ष में उसी स्थान पर बैठे परिजनों से मिल और बात कर रहे थे, जहाँ उपवास के समय बैठे थे। नीचे मिलने वालों की लंबी कतार लगी थी। उस दिन गुरुदेव के प्रवचन या संदेश जैसा कोई आयोजन नहीं हुआ। लेकिन आगंतुकों से, सभी से मिले। किसी को भी उनके दर्शन, श्रवण और चरणवंदन से वंचित नहीं रहना पड़ा।

जल-उपवास पूरा होने के बाद राजनीति, साहित्य, कला, विज्ञान, संस्कृति और दर्शन क्षेत्र के विभूतिवान व्यक्तियों का ध्यान अनायास ही शांतिकुंज या गायत्री परिवार की ओर आकर्षित हुआ। यों कहें कि उनके मन में युग-साधना विज्ञान और परिवर्तन की वेला, जिसे गुरुदेव दो शब्दों में 'गायत्री चेतना' कहते थे, के प्रति रुझान पैदा हुआ। इन क्षेत्रों के लब्ध प्रतिष्ठित नाम गायत्री परिवार के संपर्क में आने लगे। उस समय उत्तर प्रदेश में बेहद चर्चित और प्रभावशाली नामों में एक नाम वहाँ के राज्यपाल एम० चेन्ना रेड्डी का ही था। करीब साल भर पहले चेन्ना रेड्डी के नाम से राज्य के धर्म संस्थान बुरी तरह विचलित हो उठे थे।

(क्रमशः)

बोधिसत्व सुंदर कमल के तालाब के पास बैठे वायुसेवन कर रहे थे। नव-विकसित पंकजों की मनोहारी छटा ने उन्हें अत्यधिक आकर्षित किया तो वे चुप बैठे न रह सके अतएव उठे और सरोवर में उतरकर निकट से जलज गंध का पान कर तृप्ति लाभ करने लगे। तभी किसी देवकन्या का स्वर उन्हें सुनाई पड़ा—तुम बिना कुछ दिए ही इन पुष्पों की सुरभि का सेवन कर रहे हो। बोधिसत्व उस आक्षेप को सुनकर स्तंभित रह गए। तभी एक व्यक्ति आया और सरोवर में घुसकर निर्दयतापूर्वक कमल-पुष्प तोड़ने लगा। उसे रोकना तो दूर, किसी ने उसे मना तक भी न किया। इस दृश्य के साक्षी बोधिसत्व ने उस देवकन्या से पूछा—"देवी! मैंने तो केवल पुष्पों का गंधपान ही किया था, पर अभी आए इस व्यक्ति ने कितनी निर्दयता के साथ पुष्पों को तोड़कर तालाब को अस्वच्छ तथा असुंदर बनाया, तब तो तुमने इसे कुछ भी नहीं कहा?" बोधिसत्व की बातों को सुनकर देवकन्या गंभीर होकर कहने लगी—"तपस्वी! लोभ तथा तृष्णाओं में डूबे संसारी मनुष्य, धर्म तथा अधर्म में भेद नहीं कर पाते। अतः उन पर धर्म की रक्षा का भार नहीं है, किंतु जो धर्मरत है, सत्-असत् का ज्ञाता है, नित्य अधिक-से-अधिक पवित्रता तथा महानता के लिए सतत प्रयत्नशील है, उसका तनिक-सा भी पथभ्रष्ट होना एक बड़ा पातक बन जाता है।" बोधिसत्व ने मर्म को समझ लिया और उनका सिर पश्चात्ताप से झुक गया। जिन पर धर्म-संस्कृति की रक्षा का भार होता है, समाज में सर्वोपरि पद पर रहने के कारण उनके दायित्व भी बढ़े-चढ़े होते हैं, अतः अधिक सजग होना उनके लिए एक अनिवार्य कर्त्तव्य होता है।

जलवायु-परिवर्तन का विकराल रूप

जलवायु-परिवर्तन का प्रभाव अब विकराल रूप धारण करता जा रहा है। राज्य, राष्ट्र और विश्व सभी इस परिवर्तन से प्रभावित हैं। हिमालयी राज्यों के विकास में भी जलवायु-परिवर्तन बाधक बन रहा है। इसके साथ इन राज्यों के विकास में मौसम एवं उनकी भौगोलिक परिस्थितियाँ भी बाधक हैं। वहाँ की कृषि भी जलवायु-परिवर्तन के कारण प्रभावित हो रही है। इसलिए वहाँ पलायन के मामले लगातार बढ़ रहे हैं। इन राज्यों के विकास के लिए समग्र रूप से समाधान खोजना आवश्यक है।

देश के हिमालयी राज्यों के विकास की संरचना तैयार करने के लिए शिमला में विगत दिनों एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन का उद्देश्य था कि कैसे जलवायु-परिवर्तन को कम किया जा सकता है; उसके लिए क्या आवश्यक कदम उठाने की जरूरत है, ताकि उससे होने वाले नुकसान को भी कम किया जा सके। शिमला में हुए इस सम्मेलन में 12 हिमालयी प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों ने भाग लिया था। इसका उद्देश्य कृषि के माध्यम से हिमालय के लोगों की अगली पीढ़ी का कल्याण करना था।

एक दशक बाद इस प्रकार का एक बड़ा सम्मेलन आयोजित हुआ था। जलवायु-परिवर्तन का प्रभाव भी हिमाचल में दिखना शुरू हो चुका है। इसके कारण जहाँ एक ओर अधिक बारिश होने से जान-माल का नुकसान हो रहा है तो वहीं दूसरी ओर बादल फटने एवं समय से पूर्व ही बरफबारी होने जैसी घटनाएँ घट रही हैं। पहाड़ी क्षेत्रों की समस्याएँ अत्यंत विकराल हैं। पर्यटन की दृष्टि से ये क्षेत्र भले ही अच्छे हैं, लेकिन वहाँ की स्थिति अत्यंत चिंताजनक है।

उत्तराखंड में पेयजल की कमी बड़ी ही भयावह समस्या के रूप में उभरकर आई है। मानकों के अनुसार—ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति को एक दिन में 40 लीटर पानी मिलना चाहिए, लेकिन वहाँ कई गाँवों में प्रतिव्यक्ति को 20 लीटर पानी भी प्रतिदिन प्राप्त नहीं होता है।

आँकड़े देखें तो सर्वाधिक पेयजल का संकट पौड़ी जिले में है। यहाँ 4732 गाँव पेयजल की किल्लत से जूझने के आदी होते जा रहे हैं। यही हालात टिहरी जनपद के भी हैं। वहाँ 3386 गाँव पानी की समस्या से त्रस्त हैं। मौसम विशेषज्ञों के अनुसार—जलवायु-परिवर्तन के कारण मध्य हिमालयी क्षेत्र के 5 फीसदी जलस्रोत पूरी तरह से सूख गए हैं और 70 फीसदी जलस्रोतों का पानी आधा रह गया है।

एक अध्ययन से पता चलता है कि सन् 1982 से अब तक इस मध्य हिमालयी क्षेत्र में सैकड़ों छोटी नदियों में पानी केवल बारिश के मौसम में ही आता है। इन जलस्रोतों के सूखने की वजह से जलवायु-परिवर्तन के कारण बारिश में बदलाव, पेड़ों का कटान, चट्टानों का दरकना, भूस्खलन, भूकंप आदि को माना जा रहा है। पहाड़ों से पलायन के कारण खेती समाप्त होना भी जलस्रोत सूखने का एक बड़ा कारण माना गया है।

उत्तराखंड में पिछले 7 वर्षों में 700 से ज्यादा गाँव खाली हो चुके हैं और पिछले 10 वर्षों में 3.83 लाख से अधिक लोग अपना गाँव छोड़ चुके हैं, इनमें 50 प्रतिशत लोगों ने आजीविका की तलाश में पलायन किया है; जबकि शेष लोग पानी की कमी और दुर्गम परिस्थितियों के कारण पलायन को विवश हुए हैं। लगता है छोटे-मोटे भूकंप के झटके अब इस पहाड़ी राज्य की नियति बन चुके हैं। भूकंप के झटकों से कभी जलस्रोत बंद हो जाते हैं तो कभी कई रास्तों के जुड़ जाने से पानी अधिक हो जाता है या पानी का मूल रास्ता बदल जाता है।

वैज्ञानिकों के एक सर्वेक्षण में यह भी पुष्टि हुई कि जलवायु-परिवर्तन के असर से झरनों में पानी कम हो रहा है। जलवायु-परिवर्तन वैश्विक संकट बनकर उभरा है, जिसका दुष्प्रभाव धरती के वातावरण, प्राणिजगत् के स्वास्थ्य एवं कृषि पर भी पड़ा है। इसके कारण ऐसे अनेक पहाड़ी इलाकों में जहाँ कभी सेब या अखरोट उगते थे—वहाँ अदरक की भारी पैदावार हो रही है, जो अपेक्षाकृत निचले इलाकों में उगाई जाती थी।

हिमाचल के किसान सेब की खेती को छोड़कर अनार और सब्जियाँ उगाने को विवश हैं। शोधकर्त्ताओं के अनुसार समुद्र तल से 1500-2500 मीटर की ऊँचाई पर हिमालय-शृंखला के सेब उत्पादन वाले क्षेत्रों में बेहतर गुणवत्ता के

सेब की पैदावार के लिए 1000-1600 घंटों की ठंढक होनी जरूरी है, लेकिन इन इलाकों में बढ़ते तापमान और अनियमित बरफबारी के कारण सेब-उत्पादन अब और ऊँचाई वाले क्षेत्रों की ओर खिसक रहा है। यही हालात दार्जिलिंग और सिक्किम में भी हैं।

एक दशक में जलवायु-परिवर्तन के प्रभाव से भारत के हिमालयी क्षेत्रों में बादल फटने की घटनाएँ तेजी से बढ़ी हैं। उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश जैसे राज्यों में भी अब हर साल बरसात के दौरान जगह-जगह बादल फट रहे हैं। उत्तराखंड में बादल फटने से आई तबाही को भला कौन भूल सकता है? आज भी उत्तराखंड में कुछ नदियाँ रास्ता बदल रही हैं। तेज बहाव की वजह से नदियाँ बालू, मिट्टी और पत्थरों को अलग ढंग से बहा रही हैं। इस कारण नए रास्ते भी बन रहे हैं।

नदियों के रास्ता बदलने से सड़कें, इमारतें और खेत भी बह रहे हैं। इंटरनेशनल सेंटर फॉर इंटीग्रेटेड माउंटेन डेवलपमेंट की रिपोर्ट कहती है कि वर्तमान घटनाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि भारत के हिमालयी राज्यों में बादल फटने से अचानक आने वाली बाढ़ के मामले बढ़े हैं।

हिमालयी राज्यों के विकास में अवरोध केवल मौसम या जलवायु ही नहीं, बल्कि उनकी भौगोलिक परिस्थितियाँ भी हैं। आज देश में सड़कों का जाल तेजी से बिछ रहा है; जिससे पहाड़ी क्षेत्र भीतर से खोखले होते चले जा रहे हैं। पहाड़ या तो टूट रहे हैं या जगह-जगह से दरक रहे हैं। दूसरी तरफ ऐसे क्षेत्र आज भी स्वास्थ्य-सेवाओं से पूरी तरह से वंचित हैं। अगर विकास की बात की जाए तो इन जगहों में पर्यटन फल-फूल रहा है।

लोग दूर-दूर से वहाँ आते भी हैं, लेकिन वहाँ उद्योग धंधों और कल-कारखानों का अभाव है। युवाओं को रोजगार के अवसर का अभाव है। ऐसे में उनके पास पलायन के अलावा कोई विकल्प नहीं है। अधिकतर पहाड़ी क्षेत्रों में सुख-सुविधाओं का घोर अभाव है। इस तरह के पलायन से हमारे सीमावर्ती क्षेत्र असुरक्षित होते जा रहे हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन राज्यों की समस्याओं का सार्थक समाधान ढूँढ़ा जाए।

ये गंभीर समस्याएँ हैं और इनका जल्द ही कोई निदान निकालना आवश्यक है। इन समस्याओं का दरद स्थानीय निवासियों के अलावा कोई नहीं समझ सकता है। जलवायु-परिवर्तन के लिए हम सब दोषी हैं। अब विश्व के सभी देश इसके लिए आगे आ रहे हैं और पर्यावरण की चुनौती से निपटने के लिए प्रतिबद्ध भी हो रहे हैं। यह आशा की एक किरण है। हम सबको मिलकर जलवायु-परिवर्तन की इस चुनौती को स्वीकार कर इसके समुचित समाधान का उपाय ढूँढ़ना चाहिए। ❑

एक ब्राह्मण की गाय को चोरों ने चुराने की योजना बनाई। रात्रि में वे गाय चुराकर ले जा रहे थे कि खटर-पटर की आवाज में ब्राह्मण की आँख खुल गई। वस्तुस्थिति भाँपकर चोरों की योजना में व्यतिक्रम उत्पन्न किए बिना ही ब्राह्मण गाय के छोटे बछड़े को कंधे पर रखकर चोरों के पीछे-पीछे चल दिए और उनके ठिकाने तक जा पहुँचे। चोर ब्राह्मण को अपने यहाँ उपस्थित देखकर घबरा गए। ब्राह्मण ने पहले तो बछड़े को उन चोरों को थमाया और फिर बोले—"भले आदमी! इस बछड़े को तो लेते जाते। इसके बिना दूध कैसे निकालोगे?" चोर ब्राह्मण की सहजता और उदारता पर मुग्ध हो गए और उनका हृदय परिवर्तित हो गया। क्षमा-याचना कर चोरों ने ब्राह्मण की गाय बछड़ेसहित उन्हें वापस कर दी और भविष्य में चोरी न करने का संकल्प भी लिया।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 157

हृदय रोगों की यौगिक चिकित्सा

जीवनशैली की अस्त-व्यस्तता और खान-पान के असंयम से उत्पन्न बीमारियों में से कुछ ऐसी हैं, जो अत्यंत घातक और जटिल हैं। हृदय संबंधी समस्याएँ इसी श्रेणी में आती हैं। हृदय रोग के बढ़ते मरीजों की संख्या और मृत्यु दर के आधार पर सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि हृदय संबंधी रोग कितना घातक और गंभीर है।

आज के आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वैसे तो हृदय संबंधित बीमारियों के उपचार के लिए कई आधुनिक तकनीकें, विधियाँ और दवाइयाँ खोज ली गई हैं, परंतु ये सब प्राय: रोग के उपचार से जुड़ी हैं और इनके अन्य तरह से दुष्प्रभाव भी स्वास्थ्य पर देखे जाते हैं। जबकि आवश्यकता इस बात की है कि हृदय संस्थान को स्वस्थ कैसे रखा जा सकता है ? हृदय रोगों की रोक-थाम और रोगग्रस्त हो जाने पर उनका समुचित तथा दुष्प्रभावरहित प्रबंधन करने की विधियों को तलाशना वर्तमान समय की महती माँग है।

इस दिशा में पहल करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योग एवं स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत एक विशेष शोधकार्य संपन्न कराया गया है। यह शोध अध्ययन वर्ष-2015 में शोधार्थी कुलदीप सिंह बिष्ट द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० ए०के० दत्ता जी के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध अध्ययन का विषय है—**'दु स्टडी दि इफेक्ट ऑफ सलेक्टिव यौगिक प्रैक्टिस ऑन कोरोनरी हार्ट डिजिस पेशेन्ट्स'**।

कोरोनरी हार्ट डिजिस का तात्पर्य है कि हृदय में ऑक्सीजनयुक्त रक्त-प्रवाह बनाए रखने वाली धमनियों का सिकुड़ जाना। इसमें कोरोनरी धमनियों में फैट अथवा कॉलेस्ट्रॉल जमा हो जाता है, जिससे हृदयतंत्र की कार्य प्रणाली प्रभावित हो जाती है। फलस्वरूप सीने में दरद या दबाव महसूस होता है; हाथों, कंधों, पीठ, जबड़े तक में दरद होता है और ज्यादा गंभीर होने पर हार्ट अटैक तक हो जाता है।

आनुवांशिक कारणों के अतिरिक्त इस समस्या के प्रमुख कारण व्यक्ति की जीवनशैली और आहार-विहार से जुड़े हैं, जिससे यह रोग निरंतर वृद्धि करते हुए एक बड़ी जनसंख्या को अपनी चपेट में ले चुका है। इन कारणों में डायबिटीज, कॉलेस्ट्रॉल, हाई ब्लडप्रेशर, मोटापा जैसी समस्याएँ भी हैं, जो हृदय रोगों को और गंभीर बना देती हैं। इन सबके पीछे अव्यवस्थित खान-पान, धूम्रपान अथवा व्यायाम का अभाव, आलस्य-प्रमाद से भरी हुई आरामतलब दिनचर्या, विकृत चिंतनशैली और तनाव जैसे कारक ज्यादा जिम्मेदार हैं।

इस शोध अध्ययन में हृदय रोग से जुड़े उक्त सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी ने उपचार एवं रोक-थाम की दिशा में सार्थक प्रयास किया है। प्रयोगात्मक अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा पीजीआईएमईआर चंडीगढ़ के कार्डियोलॉजी विभाग के अंतर्गत हृदय धमनी रोग के 80 लोगों को प्रयोग हेतु चयनित किया, जिनकी उम्र 35 से 60 वर्ष के बीच थी। सभी चयनितों को दो वर्गों में विभाजित कर प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व शोध-उपकरणों द्वारा उनका स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। इकोकार्डियोग्राफी, LVEF, सीरम ग्लूकोज प्रोफाइल एवं लीपिड प्रोफाइल, ब्लडप्रेशर, पल्स रेट, BMI एवं HAM-A (एन्जाइटी टेस्ट) आदि परीक्षणों के पश्चात छह माह तक के लिए प्रयोग प्रारंभ किया गया।

शोधार्थी द्वारा प्रयोग हेतु चयनित यौगिक अभ्यास के अंतर्गत निम्नलिखित विशिष्ट यौगिक तकनीकों को सम्मिलित किया गया—

(1) आसन—14 मिनिट (शशांकासन, उष्ट्रासन, वज्रासन, गोमुखासन, भुजंगासन, नौकासन, सुप्त उदराकर्षणासन, नाड़ीताणासन और शवासन)

(2) प्राणायाम—20 मिनिट (नाड़ी शोधन प्राणायाम 10 मिनिट एवं श्वास-प्रश्वास का अभ्यास 10 मिनिट),

(3) योगनिद्रा—15 मिनिट

(4) ओम् उच्चारण—3 चक्र

(5) नेति क्रिया—सप्ताह में दो दिन।

इस तरह एक घंटे तक के योगाभ्यास सत्र को शोधार्थी द्वारा सप्ताह में पाँच दिन संपन्न कराया जाता रहा और शोध अध्ययन की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की भाँति पुन: प्रयुक्त शोध-उपकरणों के माध्यम से सभी चयनितों का परीक्षण किया गया। परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण-विवेचन करने पर यह पाया गया कि शोधकार्य में सम्मिलित यौगिक अभ्यास का कोरोनरी हार्ट डिजिस मरीजों पर सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है। तथ्यात्मक आँकड़ों के आधार पर यह देखा गया कि LVEF और इनसे संबंधित प्रभावों के प्रबंधन में प्रभावशाली परिणाम प्राप्त हुए हैं।

अध्ययन के निष्कर्ष में जो सार्थक एवं सकारात्मक पहलू सामने आए हैं, उनकी मुख्य वजह शोधार्थी द्वारा प्रयुक्त विशिष्ट यौगिक तकनीकें हैं। शोध प्रयोग में सम्मिलित सभी यौगिक तकनीकें अपने आप में विशिष्ट एवं संपूर्ण आरोग्य की दृष्टि से भी अत्यंत लाभकारी कही जाती हैं। योग चिकित्सा विज्ञान के अंतर्गत रोगोपचार में इन सभी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस प्रयोग में सम्मिलित यौगिक तकनीकों में सभी अलग-अलग तरह से रोगोपचार में उपयोगी रही हैं। जैसे—नेति क्रिया, यह श्वसनतंत्र की शुद्धता में सहयोगी बनकर श्वास-प्रश्वास-प्रक्रिया को संतुलित और सबल बनाती है।

इसके साथ ही यह शारीरिक और मानसिक ऊर्जा-प्रवाह को बनाए रखने के अलावा तंत्रिकातंत्र को सुदृढ़ बनाने में भी लाभकारी होती है। नेति की भाँति आसन भी एक प्रभावकारी यौगिक तकनीक है। इस शोध में रोग के अनुसार कुछ विशेष आसन-तकनीकों के समूह को सम्मिलित किया गया है। आसन-क्रियाओं का शरीर और मन की स्थिरता प्राप्त करने तथा स्वस्थ बनाए रखने में अत्यंत लाभकारी प्रभाव देखा गया है। आसनों के नियमित अभ्यास से शारीरिक और मानसिक आरोग्य की प्राप्ति होती है। इन विशेष शारीरिक स्थितियों का न्यूरोहॉर्मोनल तंत्र पर सीधा और सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्राणायाम की यौगिक तकनीक भी संपूर्ण स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालती है।

इसके अभ्यास से श्वास गति पर नियंत्रण, गले, छाती तथा पेट संबंधी विकारों का शमन होता है। इसकी प्रक्रिया में केंद्रीय नर्वस सिस्टम सकारात्मक रूप से प्रभावित होता है, जिसके फलस्वरूप शरीर, प्राण और मन की गतिविधियों में संतुलन-सामंजस्य प्राप्त होता है, जिससे हृदय संस्थान अनावश्यक दबाव से मुक्त बना रहता है व आरोग्य को प्राप्त करता है। इसी तरह योगनिद्रा भी ध्यान की एक विशिष्ट तकनीक है, जिसका अभ्यास सीधे मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को लाभ प्रदान करता है। इसका प्रभाव उच्च रक्तचाप, तनाव, कॉलेस्ट्रॉल जैसी समस्याओं के प्रबंधन में अत्यंत कारगर उपाय के रूप में देखा जाता है। इसके साथ ही शांति, आनंद, प्रसन्नता, स्थिरता जैसी व्यक्तित्व की उच्च क्षमताओं का विकास भी होता है और आत्मिक विकास का लाभ भी स्वत: ही मिल जाता है।

इस प्रयोगात्मक अध्ययन के परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कोरोनरी हार्ट डिजिस के मरीजों के साथ-साथ अन्य गंभीर समस्याओं—रोगों के उपचार एवं प्रबंधन में यौगिक अभ्यासों का महत्त्वपूर्ण लाभ प्राप्त किया जा सकता है। रोगों के उपचार में प्रचलित तकनीकें प्राय: एकांगी होती हैं और सीमित रूप से कार्य करती हैं; जबकि यौगिक तकनीकों का प्रभाव दीर्घकाल तक एवं व्यापकता में देखा गया है। संपूर्ण आरोग्य के साथ-साथ क्षमताओं के विकास का विज्ञान भी यौगिक प्रक्रियाओं में सन्निहित रहता है। अत: गंभीर बीमारियों के उपचार में भी इनको अवश्य रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए, ताकि एलोपैथिक चिकित्सा के प्रभावों को बढ़ाया तथा उसके दुष्प्रभावों को न्यूनतम किया जा सके।

दान को पुण्य उसी आधार पर कहा जा सकता है कि उसको प्रामाणिक माध्यमों से उच्चस्तरीय सत्प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जाए। *—परमपूज्य गुरुदेव*

इस अध्ययन के संदर्भ में यह भी महत्त्वपूर्ण पहलू जुड़ा है कि हृदय संस्थान की बढ़ती गंभीर समस्याओं का मूल कारण हमारी जीवनशैली, चिंतनशैली और गलत आहार-विहार की आदतें हैं। ऐसे में यौगिक जीवनशैली अपनाकर हम सार्थक रूप से ऐसी गंभीर बीमारियों से मुक्त रहने में सफल हो सकते हैं। ❑

प्रेम के रिश्ते में गाँठ न पड़ने दें

सुख-समृद्धि से भरापूरा परिवार ही धरती का स्वर्ग है। ऐसे परिवार की कल्पना सभी लोग करते हैं। हर व्यक्ति की इच्छा होती है कि उसका सुखी व संपन्न परिवार हो। घर की व्यवस्था इतनी उत्तम हो कि बड़ों को उचित आदर व श्रद्धा मिले तथा छोटों को स्नेह व भरपूर प्यार और आशीर्वाद मिले। इस तरह के परिवार के निर्माण में हर व्यक्ति का परस्पर सहयोगी होना अत्यंत आवश्यक है, वरना कभी-कभी गृह-क्लेश और वैचारिक मतभेदों के कारण अच्छे-भले परिवार भी नष्ट हो जाते हैं।

अत: परिवार की खुशहाली के लिए एकदूसरे की कोमल भावनाओं व संवेदनाओं को समझकर उनका आदर करना चाहिए। परिवार के सभी रिश्तों में अटूट बंधन होता है, जिनकी मर्यादा का सम्मान करना प्रत्येक सदस्य का नैतिक कर्त्तव्य है। अपने लिए दूसरों को कष्ट देने और एकदूसरे की उपेक्षा करने से रिश्तों की यह नाजुक डोर टूट भी सकती है।

आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिए पारिवारिक, आर्थिक नीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि प्रतिमाह बजट बनाने की आवश्यकता न पड़े। यह सुविधा बहुत ही सरलता से परिवार से, आपसी सामंजस्य से उपलब्ध हो सकती है। इस समस्या पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। परिवार के बड़े व्यक्तियों की जिम्मेदारी है कि वे अपनी आय को पूरे परिवार पर खरच करें, न कि अपनी अनावश्यक निजी पूर्ति के लिए उसका उपयोग करें।

इसी प्रकार छोटे सदस्यों को चाहिए कि वे सभी बड़ों को सम्मान दें, जिससे बड़े उन पर गर्व कर सकें। परिवार के बीच स्नेह, सद्भाव व सहयोग होना आवश्यक है। छोटे-छोटे कार्यों के लिए बाजार पर निर्भर रहना मतभेदों को जन्म दे सकता है, इसलिए जहाँ तक हो सके सभी को मिल-जुलकर काम करते हुए एकदूसरे का सहयोगी होना चाहिए। पति और पत्नी का रिश्ता परिवार में रीढ़ की हड्डी की तरह होता है, जिसमें अत्यंत कोमलता का संबंध होता है।

अत: जहाँ पत्नी का व्यवहार स्नेहिल हो तो वहीं पति को भी उसकी संवेदनाओं का आदर करते हुए, उसकी उचित आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए। पति-पत्नी को अपने-अपने जीवन के हर पहलू से एकदूसरे को अवगत कराना चाहिए; क्योंकि इस पवित्र रिश्ते में गोपनीयता अच्छी नहीं होती। इसी प्रकार माता-पिता, भाई-बहन, देवर-भाभी के रिश्ते को भी मर्यादा के अंतर्गत सम्मान एवं आदर देना चाहिए।

इस तरह प्रेम-भाव से तीज-त्योहारों तथा अन्य पारिवारिक आयोजनों का आनंद बढ़ जाता है तथा हर समय परिवार में चहल-पहल व खुशी का माहौल रहता है। रहीम का बहुत प्रसिद्ध दोहा है—

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गाँठ परि जाय॥

अर्थात प्रेम के धागे को कभी तोड़ना नहीं चाहिए; क्योंकि यदि यह एक बार टूट जाता है, तो फिर दोबारा नहीं जुड़ता और जुड़ता भी है तो इसमें गाँठ पड़ी रह जाती है।

बात यदि नवविवाह के संबंध की हो तो इसमें गाँठ पड़ने की संभावनाएँ ज्यादा रहती हैं; क्योंकि आरंभ में यह थोड़ा कच्चा होता है। रिश्ते की गाँठें भले ही बाहर नजर न आएँ, मगर मन में तो पड़ी ही रह जाती हैं। हमारी समझदारी से यह नाजुक संबंध सुदृढ़ हो सकता है। यदि हम भी ऐसे सुदृढ़ संबंध की नींव डालना चाहते हैं तो हमें आत्मविश्लेषण कर विवाह के आरंभिक दिनों से ही कुछ आदतों को छोड़ना होगा।

कई बार हमारी आदतें अच्छे-भले रिश्ते में गाँठ डालने का काम करती हैं। यदि हम समय रहते उन आदतों के प्रति जागरूकता बरतें तो हम अपने संबंध की बगिया को बिखरने से बचा सकते हैं। कुछ पत्नियों की आदत होती है कि वे भोजन तो बड़े प्रेम से बनाती हैं, मगर भोजन कराते समय उसके साथ दिनभर की शिकायतों को भी परोस डालती हैं—जिससे पति का मन खराब हो जाता है।

ऊपर से पत्नी यह भी चाहती है कि पति उसके बनाए भोजन की तारीफ करे। आयुर्वेद कहता है कि वही अन्न हमारे शरीर के लिए हितकारी होता है, जिसको हम शांति से खा पाएँ। शिकायत या तनाव के माहौल में खाया गया भोजन स्वास्थ्यवर्द्धक न होकर गैस, एसिडिटी और अपच जैसी समस्याओं को जन्म देता है।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए हमें शांति से खाना परोसने एवं खाने का आनंद लेना चाहिए। अपने मन की बातों के लिए दूसरा समय तय करना चाहिए। खाने के बाद दोनों चहलकदमी पर निकल जाएँ और आपस में दिन भर की बातें एकदूसरे से कहें। पति-पत्नी को दो नहीं, बल्कि एक इकाई माना गया है। इन दोनों के बीच आया प्रत्येक इनसान ही कहा जाएगा, भले ही वह उनके बच्चे हों, माता-पिता हों या भाई-बहन हों।

दोनों में बहुत-सी ऐसी आपसी बातें होती हैं, जिनका किसी तीसरे से जिक्र करना बिलकुल उचित नहीं होता। ऐसा करना रिश्ते की विश्वसनीयता को खतरे में डालता है। पति-पत्नी की आपसी बातें बाहर नहीं जानी चाहिए। मगर कुछ लड़कियाँ अपनी माँ, भाभी या किसी सहेली से भावनात्मक रूप से इतनी जुड़ी होती हैं कि वे हर आपसी बात उनसे बता देती हैं।

पति को इस बात का तब एहसास होता है, जब बातों-बातों में या हाव-भाव से वे बातें बाहरवालों से निकलकर आती हैं। पत्नी की ऐसी हरकत से पति का उस पर से विश्वास उठ जाता है और वह अपनी गोपनीय और महत्त्वपूर्ण बातें पत्नी को बताना बंद कर देता है।

'आपसी विश्वास' दांपत्य जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण और जरूरी गुण होता है। प्रेम के धागे की तरह ही विश्वास का धागा भी टूटने पर पुनः नहीं जुड़ पाता। अतः इसे सदा जीवंत बनाए रखना चाहिए। विवाह नामक रिश्ता तभी सार्थक होता है, जब उसमें एक 'तू' और एक 'मैं' बँधकर 'हम' हो जाते हैं। फिर उनमें कुछ 'तेरा' या 'मेरा' नहीं होता। जो होता है, 'हमारा' होता है।

जिस विवाह में ऐसा नहीं होता, समझना चाहिए कि वह विवाह नहीं, बस, एक समझौता भर है। इस बात को समझते हुए निर्णय हमको करना है कि हमको अपने दांपत्य की नींव प्रेम, विश्वास और समर्पण पर रखनी है या 'तेरे-मेरे' की स्वार्थपूर्ण सोच पर। परिवार में संवेदना, भावना एवं समझदारी का प्रमाण बढ़ना चाहिए। इसी समझदारी से परिवार में आंतरिक समस्याएँ उत्पन्न नहीं होतीं व परिवार स्वर्ग बनता है; जहाँ सुख-शांति एवं आनंद का अनुभव प्राप्त होता है। ❑

ईश्वर की लीला पर अपनी तर्कबुद्धि से प्रश्नचिह्न लगाते एक शिष्य ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस से कहा—"महाराज! ईश्वर साकार हैं, यह विश्वास मानो हुआ, पर मिट्टी की या पत्थर की मूर्ति तो वे हैं नहीं। जो मिट्टी की मूर्ति पूजते हैं, उन्हें समझाना भी तो चाहिए कि मिट्टी की मूर्ति ईश्वर नहीं है और मूर्ति के सामने ईश्वर की ही पूजा करना ठीक है, किंतु मूर्ति की नहीं।" इस प्रश्न को सुनकर स्वामी रामकृष्ण परमहंस अप्रसन्न हुए व गंभीर होकर कहने लगे—"तुम मिट्टी की मूर्ति की पूजा की बात कहते हो। यदि मिट्टी ही की हो तो भी उस पूजा की जरूरत है। देखो, सब प्रकार की पूजाओं की योजना ईश्वर ने ही की है। जिनका यह संसार है, उन्होंने ही यह सब किया है। जो जैसा अधिकारी है, उसके लिए वैसा ही अनुष्ठान ईश्वर ने किया है। लड़के को जो भोजन रुचता है और जो उसे सह्य है, वही भोजन उसके लिए माँ पकाती है, समझे ?" शिष्य की जिज्ञासा का समाधान हुआ और वह भक्तिभाव से साधना में संलग्न हो गया।

एकाग्रता की शक्ति को ऐसे बढ़ाएँ

एकाग्रता का महत्त्व सर्वविदित है। जीवन की सारी उपलब्धियाँ, विभूतियाँ एवं ऋद्धि-सिद्धियाँ एकाग्र मन के गर्भ से ही प्रस्फुटित होती हैं, लेकिन अधिकांश लोग एकाग्रता के अभाव में जीवन की पूरी क्षमताओं का नियोजन नहीं कर पाते व संभव सफलता से वंचित रहते हैं और एक सार्थक जीवन नहीं जी पाते, जिसका एक कारण मन की चंचल प्रवृति है।

सामान्यतया मन इधर-उधर भागता रहता है, कहीं एक जगह पर टिककर नहीं बैठता। कहा भी गया है कि मन बहुत चंचल है और इसका वेग वायु से भी तेज है। किसी एक जगह पर टिककर बैठना इसकी फितरत में नहीं है। इस तरह मन को एकाग्र करना एक विशेष पुरुषार्थ माँगता है। यह एक तरह की मानसिक साधना है, जिसके अंतर्गत मन को निरर्थक बातों से हटाकर सार्थक कार्यों में लगाना पड़ता है और अपने समय, श्रम व मनोयोग का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति की जाती है।

ध्यान की प्रक्रिया में यही किया जाता है कि मन को निगृहीत कर एक बिंदु पर लगाया जाता है। यह प्रक्रिया दो चरणों में पूरी होती है। पहला, मन के बिखराव को समेटना। दूसरा, इसे एक विषय पर केंद्रित करना। इन दोनों चरणों का सम्मिलित रूप है वह एकाग्रता, जो अभीष्ट सिद्धि व सफलता को संभव बनाती है। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि एकाग्रता का अर्थ स्थिरता व जड़ता नहीं है, बल्कि विषय के हर पहलू पर विचार करना, हर पक्ष से सोचना है व सम्यक चिंतन तथा संतुलित जीवन जीना है।

एकाग्रता के कई लाभ हैं। एकाग्रता लक्ष्य को और अधिक स्पष्ट तथा निश्चित करती है, जिससे अंतर्मन में निहित क्षमताओं, शक्तियों का सहज प्रस्फुटन होता है। एकाग्रता से बौद्धिक विकास होता है, बुद्धि प्रखर होती है। एकाग्रता जितनी गहरी होगी, उतना ही गहरा प्रभाव मन पर डालती है, जिससे अधिक समय तक सम्यक स्मृति बनी रहती है।

इस तरह एकाग्रता स्मृति को बढ़ाती है। एकाग्रता से ग्रहणशीलता बढ़ती है, जिससे विषय जल्दी समझ आता है तथा हम जल्दी सीख पाते हैं। आश्चर्य नहीं कि एकाग्रता के साथ पढ़ाई या काम करने की आदत व्यक्ति को शीघ्र ही उस विषय में पारंगत बना देती है। यह मौलिकता के विकास में सहायक रहती है। नई कल्पनाएँ, नए विचार और योजनाएँ एकाग्रता के गर्भ से ही जन्म लेती हैं। एकाग्रता से अतींद्रिय क्षमता तक विकसित होती है।

योगी जन अपनी एकाग्रता के बल पर ही सारे कार्य करते हैं। दूरदर्शन, दूरश्रवण जैसी क्षमताएँ एकाग्रता का ही परिणाम हैं। जिस व्यक्ति या विषय पर योगी जन मन को केंद्रित करते हैं, उससे संबंधित सारा ज्ञान उन्हें हो जाता है। महर्षि पतंजलि का सारा दर्शन एकाग्रता पर टिका हुआ है। प्रत्याहार से धारणा-ध्यान के प्रयोग वस्तुत: एकाग्रता के ही प्रयोग हैं, जो अंतत: समाधि की परमावस्था के रूप में फलित होते हैं।

एकाग्रता बढ़ाने के कई उपाय हैं। पहला उपाय रुचि का जागरण है। जिस विषय में रुचि होगी, उस पर मन अपने आप टिकता है, एकाग्र हो जाता है व उससे जुड़े ज्ञान को सहज रूप में अर्जित करता है। जैसे खेल में रुचि होने पर उससे जुड़े सारे आँकड़े अपने आप याद रहते हैं; जबकि रुचि के अभाव में इतिहास की तिथियाँ व स्कूली पाठ्यक्रम से जुड़े आँकड़े याद नहीं रहते व यह सब एक बोझिल कार्य लगता है।

फिर विषय की उपयोगिता की समझ दूसरा आधार है। विषय की उपयोगिता समझ आने पर भी मन स्वत: एकाग्र हो जाता है। जैसे व्यक्ति को किसी कार्य में नाम, यश, धन व पुण्यलाभ आदि के मिलने की संभावना रहती है तो उसके प्रति अधिक उत्साह रहता है और मन लगने लगता है। इसी के साथ लक्ष्य स्पष्ट हो तो भी एकाग्रता बनी रहती है। लक्ष्य की स्पष्टता से मन की शक्तियाँ सक्रिय होती हैं और व्यक्ति अपनी मंजिल की ओर गतिशील रहता है।

लिख-लिखकर पढ़ने से भी मन की एकाग्रता बढ़ती है। आश्चर्य नहीं कि मंत्र-लेखन को उसके जप से अधिक प्रभावशाली माना गया है। संगीत सुनने से भी मन की एकाग्रता

बढ़ती है। निर्मल प्राकृतिक परिवेश, स्वच्छ एवं व्यवस्थित कार्यस्थल एकाग्रता बढ़ाने में सहायक रहते हैं।

ध्यान एकाग्रता को बढ़ाने का एक सशक्त उपाय है। अपने श्वास के आवागमन पर ध्यान का अभ्यास किया जा सकता है। अपने इष्ट, आराध्य का ध्यान मन को सबल बनाने के साथ एकाग्रता में सहायक रहता है।

एक सुव्यवस्थित दिनचर्या इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण होती है। इसके आधार पर मन की एकाग्रता बनी रहती है। हर कार्य के लिए समय का उचित बँटवारा होने से मन एक कार्ययोजना के अंतर्गत व्यस्त रहता है। अनावश्यक भटकन एवं बिखराव की गुंजाइश नहीं रहती।

अनवरत कार्य एवं श्रम के बीच में विश्राम उपयोगी रहता है। लगातार पढ़ाई करते हुए कुछ मिनट का अल्प-विराम एकाग्रता में सहायक रहता है। इसी तरह पर्याप्त नींद मन को सबल एवं एकाग्र रखती है। दिन में लगातार श्रम के बाद तन-मन से थकने पर कुछ मिनट की झपकी या केट नैप मन-मस्तिष्क को तरोताजा करती है।

एकाग्रता के लिए स्वस्थ शरीर का होना भी आवश्यक है। कहते हैं कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क वास करता है। व्यायाम और खेल भी इस संदर्भ में उपयोगी रहते हैं। ये शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी रहते हैं और एकाग्रता बढ़ाने में सहायता करते हैं।

यहाँ एकाग्रता में बाधक तत्त्वों की जानकारी भी आवश्यक हो जाती है, जिससे इनके समाधान पर विचार किया जा सके। इस संदर्भ में आलस्य व मन की चंचलता प्रमुख व्यवधान हैं, जिनका समाधान दृढ़ इच्छाशक्ति, अनुशासन जीवनचर्या और कठोर श्रम है।

इसके साथ घबराहट, चिंता या भय की स्थिति में मन एकाग्र नहीं हो पाता। आशावाद, आत्मविश्वास, ईश्वरविश्वास से इन्हें दूर किया जा सकता है। बहुत अधिक श्रम से तन-मन थक जाता है तो भी मन एकाग्र नहीं हो पाता। इसके लिए आँखें बंदकर थोड़ा विश्राम करें व तन-मन को अपनी खोई ऊर्जा को वापस लाने दें।

निरंतर एक ही काम करते रहने से मन ऊब जाता है तो काम बदल लें या घूमने, टहलने निकल जाएँ। बहुत सारे काम हाथ में लेने पर भी मन एकाग्र नहीं हो पाता। इसका समाधान विभिन्न कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर एक-एक कर निपटाते रहने से होता है।

गप्पबाजी व स्मार्टफोन का व्यसन भी मन की एकाग्रता में बाधक बनते हैं। इसलिए इनके लिए समय को निर्धारित करें। गलत संगत से बचें, नकारात्मक व व्यर्थ के कार्यों में समय बरबाद न करें।

इस तरह चाहे भौतिक प्रगति हो या आध्यात्मिक विकास, दोनों के लिए मन का एकाग्र होना आवश्यक है। एकाग्रता के बिना किसी भी कार्य में सफलता की आशा नहीं की जा सकती। ऊर्जा का सुनियोजन किसी भी दिशा में बढ़ने के लिए एकाग्रता आवश्यक होती है। अतः प्रतिभा के जागरण व संवर्द्धन में एकाग्रता की साधना एक अनिवार्य अंग है। ❑

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥

—महाभारत

अर्थात धर्म स्वयं का निरादर करने वाले को नष्ट कर देता है, मार देता है और अपनी रक्षा करने वाले की रक्षा करता है। इसलिए धर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। धर्म को कभी मरा न समझो और सर्वदा उसका पालन करते हुए उसकी रक्षा करो।

युगगीता —264

आसुरी वृत्ति वालों को न मिलता है सुख, न सिद्धि और न ही परमगति

(श्रीमद्भगवद्गीता के देवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की बाईसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के बाईसवें श्लोक की व्याख्या इससे पूर्व की किस्त में प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि हे कुंतीनंदन! जो मनुष्य नरक के इन तीनों दरवाजों से रहित होकर अपने कल्याण हेतु आचरण करता है, वह परमगति को प्राप्त हो जाता है। काम, क्रोध और लोभ से रहित होने का तात्पर्य है—इनके वश में न होना, इन्हीं तीनों को श्रीभगवान ने इससे पूर्व के श्लोक में नरक का द्वार कहकर संबोधित किया था। जो इनके वश में नहीं होता, वह स्वतः ही स्वकल्याण, आत्मकल्याण के पथ पर गतिशील हो उठता है। श्रीभगवान इस श्लोक में कहते हैं कि 'तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः' अर्थात तम से आच्छादित नरक के इन तीनों द्वारों से जो व्यक्ति मुक्त हो चुका है—वही कल्याण के पथ को प्राप्त कर पाता है और वही परमगति को प्राप्त हो जाता है।

श्रीभगवान यहाँ पर ये भी कहते हैं कि 'एतैर्विमुक्तः'—अर्थात काम, क्रोध व लोभ की भावनाओं से मुक्त। इन भावनाओं से लिप्त होकर जो भी कर्म किया जाता है, वह कभी भी कल्याणकारी नहीं होता है। काम, क्रोध और लोभ से जो घिरा रहता है, उसके द्वारा किया गया किसी भी तरह का कार्य अकल्याण का आधार बन जाता है। ऐसे व्यक्ति फिर यदि यज्ञ, दान भी करते हैं तो उनका परिणाम भी अकल्याणकारी ही निकलता है। इसीलिए भगवान इनको त्यागने पर विशेष बल देते हैं। उनके कहने का अर्थ स्पष्ट है कि वस्तुतः काम, क्रोध, लोभ—एक ही जल की विभिन्न धाराएँ हैं। जो हमारी कामनाओं की पूर्ति में हमारा सहयोगी बनता दिखाई पड़ता है—वह हमारे लोभ का कारण बन जाता है, परंतु जो हमारी कामनाओं की पूर्ति का विरोध करता दिखता है—वह हमारे क्रोध का कारण बन जाता है।

भगवान श्रीकृष्ण यहाँ कहते हैं कि काम, क्रोध और लोभ से बँधा व्यक्ति अपने जीवन को नरक बना लेता है, इसीलिए इन तीनों का त्याग कर देना चाहिए; क्योंकि इन तीनों नरकों से मुक्त हुआ पुरुष ही अपने कल्याण के पथ का आचरण कर पाता है। आत्मकल्याण का मार्ग मात्र उसी के लिए सुरक्षित है, जो नरक के इन तीनों द्वारों से मुक्त हो चुका है।]

इसके बाद श्रीभगवान अगला सूत्र कहते हैं कि

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ 23॥

शब्दविग्रह—यः, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारतः, न, सः, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न पराम्, गतिम्।

शब्दार्थ—जो पुरुष (**यः**), शास्त्रविधि को (**शास्त्रविधिम्**), त्यागकर (**उत्सृज्य**), अपनी इच्छा से मनमाना (**कामकारतः**), आचरण करता है (**वर्तते**), वह (**सः**), न (**न**), सिद्धि को (**सिद्धिम्**), प्राप्त होता है (**अवाप्नोति**), न (**न**), परम (**पराम्**), गति को (और) (**गतिम्**), न (**न**), सुख को ही (**सुखम्**)।

अर्थात जो मनुष्य शास्त्रोक्त विधि को छोड़कर मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को, न सुख को और न परमगति को ही प्राप्त होता है। शास्त्रोक्त विधि का अर्थ आध्यात्मिक पथ से लेना चाहिए।

वह पथ जिस पर चलने से आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त होता हो—उसे ही शास्त्रोक्त कहना श्रेष्ठ है। कुछ लोग शास्त्रोक्त का अर्थ मात्र बाह्य कर्मकांड से ही लगाकर बैठ जाते हैं; जबकि यहाँ श्रीभगवान ने आत्मकल्याण के

विषय में बोलने के तुरंत बाद ही इस विषय में बोला है तो उनका अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है कि वे उस विधि की बात अर्जुन से कर रहे हैं, जिस पर चलने से लौकिक प्रगति; जो सुख का कारण है और अलौकिक विकास, जो सिद्धि प्राप्ति का माध्यम है—दोनों ही सुनिश्चित हो पाते हैं।

यहाँ श्रीभगवान ने एक शब्द प्रयोग किया है कि **'कामकारतः'**—अर्थात स्वच्छंद, उच्छृंखल आचरण करने वाला—मनमाने आचरण करने वाला। ऐसा कहने के पीछे का अभिप्राय उन लोगों की ओर इशारा करता है, जो आंतरिक दुर्गुणों की उपेक्षा करके बाहरी आडंबरों और आचरणों को ही मूल मान बैठते हैं; जबकि वास्तविक मूल्य तो आंतरिक गुणों का ही होता है।

इसीलिए आख्यानों में विवरण मिलता है कि रावण ने, भस्मासुर ने, त्रिपुर ने ऐसे अनेक असुरों ने बाह्य दृष्टि से तो तप ही किया, परंतु आंतरिक निर्मलता के अभाव में वो उस तप शक्ति का उपयोग—उपभोग करने में व मनमाना आचरण करने में ही करते रहे। इसीलिए भगवान कहते हैं कि **'न परां गतिम्'** उनको परमगति प्राप्त नहीं हो पाती; क्योंकि वो आत्मिक दृष्टि से शुद्ध नहीं हो पाए होते हैं।

मनुष्य जाति में भी विभिन्न प्रकार के लोग मिलते हैं। कुछ ऐसे होते हैं, जो कि इस दृश्य जगत् के भोग को ही जीवन का मूल उद्देश्य मानकर उसी को पाने का उपाय व प्रयत्न करते रहते हैं, उसी की प्राप्ति में अपने इस देवदुर्लभ मानव जीवन को नष्ट कर देते हैं। जिस किसी भी प्रकार से उनकी वासना की पूर्ति होती है—वही कर्म उनके लिए करणीय बन जाता है।

इसी प्रकार के मनुष्य आसुरी वृत्ति के होते हैं। उनके द्वारा मनमानी दृष्टि से किए गए कर्म दुःख और संतापरूपी फल प्रदान करते हैं, जिन्हें शास्त्रीय दृष्टि से हेय कहा जाता है। इन्हीं कर्मों की ओर महर्षि पतंजलि, योगसूत्र में इशारा करते हैं जब वे कहते हैं(2/16 योगसूत्र)-**हेयं दुःखम् अनागतम्॥** दूषित कर्मों के परिणामस्वरूप प्राप्त दुःख हेय यानी त्याज्य है।

उस हेय का कारण महर्षि पतंजलि अविद्या को बताते हैं—**तस्य हेतुः अविद्या**। (2/24) ऐसे अविद्याग्रस्त व्यक्तित्व हेयमार्गी होते हैं—उन्हें न मन में शांति मिलती है और परमगति तो उनसे कोसों दूर होती है। दूसरे लोग वे हैं, जो शास्त्रविहित कर्म तो करते हैं, आध्यात्मिक-धार्मिक अनुष्ठानों में निरत भी रहते हैं, परंतु अभी उनकी आंतरिक दृष्टि से निर्मलता नहीं हो पाई होती है। परिणामस्वरूप उन्हें सुख, वैभव मिलता है और पुण्यप्रकाश बढ़ने पर सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं, परंतु परमगति की प्राप्ति उन्हें भी नहीं हो पाती। ऐसे व्यक्तित्व प्रेयमार्गी कहलाते हैं।

इनसे ऊपर की श्रेणी में उन व्यक्तित्वों का नाम आता है, जिनके हृदय में इस जन्म-मृत्यु के प्रवाह से सदा मुक्त होने की उत्कट अभिलाषा रहती है। ऐसे व्यक्तित्व परम सत्य को पाने के अभिलाषी होते हैं और ये श्रेयमार्गी कहलाते हैं। उनके लिए इस संसार का सुख और पारलौकिक संसार का स्वर्गीय ऐश्वर्य—ये दोनों ही त्याज्य होते हैं। हेयमार्गी, प्रेयमार्गी और श्रेयमार्गी ये तीन ही तरह के व्यक्तित्व मूलरूपेण संसार में हैं। प्रेम को त्याग कर श्रेय का वरण करने वाला व्यक्ति ही आत्मकल्याण का; ब्रह्मविद्या का अधिकारी बन पाता है।

जो समझ सकते हैं, उन्हें मैंने बोध दिया है और नासमझों को विधियाँ दी हैं।

—भगवान बुद्ध

ऐसे व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुए ही यम, नचिकेता से कहते हैं कि

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

(कठोपनिषद्-1/2/2)

अर्थात श्रेय और प्रेय, ये दोनों ही मनुष्य के सामने आते हैं, किंतु बुद्धिमान व्यक्ति उन दोनों के स्वरूप और परिणाम पर भली भाँति विचार कर उनको पृथक-पृथक समझ लेता है—वह धीर पुरुष परम पुरुषार्थरूपी मोक्ष के साधन श्रेय को प्रेय की तुलना में श्रेष्ठ समझता है, परंतु अविद्याग्रस्त व्यक्ति प्रेय को ही श्रेष्ठ मानकर उसको वरण करता है।

स्पष्ट है कि आत्मकल्याण का पथ श्रेयमार्गी के लिए सुरक्षित है और हेयमार्गी पथ वाले आसुरी व्यक्तित्व न सिद्धि को, न सुख को और न ही परमगति को प्राप्त हो पाते हैं। (क्रमशः)

भारतीय संस्कृति में धर्म का शाश्वत स्वरूप

धर्म शब्द आज बदनाम हो चला है तथा इसकी सत्ता संदेह के घेरे में है। प्रतिदिन जनमाध्यमों में धर्म के नाम पर घट रही घटनाओं को पढ़कर-देखकर प्रबुद्ध व्यक्ति के मन में धर्म के प्रति कोई सकारात्मक व बहुत प्रेरक भाव नहीं जगते और यह अकारण भी नहीं है। जब धर्म के नाम पर मात्र कर्मकांड को ही सब कुछ मान लिया जा रहा हो व जिसका आत्मपरिष्कार से कोई अधिक लेना-देना नहीं हो। जब धर्म के नाम पर अनैतिक आचरण की छूट मिलती हो व इनके लिए साक्ष्य धर्मग्रंथों के दिए जा रहे हों।

धर्म के नाम पर अकर्मण्य जीवन को प्रश्रय देकर समाज के लिए भार बनने का प्रचलन जारी हो तथा एक-दूसरे के प्रति हिंसा-विद्वेष से लेकर मार-काट, सब धर्म के नाम पर हो रहे हों। जब धर्म जीवन व युग-चुनौतियों के सार्थक समाधान देने के बजाय समस्याओं को और विकराल रूप देने का माध्यम बन रहा हो तो फिर ऐसे धर्म के प्रति आस्था का विचलन स्वाभाविक है। जबकि भारतीय संस्कृति में धर्म की अवधारणा बहुत उदात्त एवं सृजनात्मक रही है व इसके शाश्वत एवं सार्वभौमिक स्वरूप का यहाँ प्रतिपादन मिलता है व इस रूप में धर्म यहाँ संस्कृति व समाज का मेरुदंड रहा है, लेकिन वर्तमान में धर्म जैसी शाश्वत-अनित्य सत्ता का इतना तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत होना व इसके विकृत स्वरूप का बोलबाला—यह सब चिंता एवं चिंतन का विषय है।

आवश्यकता इसके वास्तविक स्वरूप को समझने की है, जिससे इस पर छाया भ्रम-भ्रांतियों का कुहासा छँट सके व जनता इसके शाश्वत स्वरूप को हृदयंगम कर सके और यह मानव मात्र के लिए श्रेष्ठता के पथ पर आगे बढ़ने का साधन बने, जो कि इसका मूल प्रयोजन रहा है।

धर्म क्या है? उसका आदि उद्भव, वेदों में पूर्ण परिष्कृत रूप में परिभाषित है। सर्वप्रथम ऋग्वेद में धर्म शब्द प्रयुक्त होता है। 'धृ' धातु में 'मन्' प्रत्यय जोड़कर धर्म बनता है। 'धृ' धातु का अर्थ है—धारण करना।

धरति लोकान् प्रियते पुण्यात्मभिः इति वा। अर्थात् जो लोकों को धारण करता है, जो पुण्यात्माओं द्वारा धारण किया जाता है, वह धर्म है। महाभारत में भी इसी तरह महर्षि वेदव्यास लिखते हैं—**धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।** अर्थात जो व्यक्ति को, समाज को, जनसामान्य को धारण करे, उसे धर्म कहते हैं। इसी तरह आचार्य चाणक्य ने सूत्र—234 में कहा है—**धर्मेण धारयते लोकः।** अर्थात धर्म लोक को धारण करता है। इस तरह धर्म एक ऐसा तत्त्व है, जो मनुष्य की तरह लोक अर्थात समाज का भी धारक है। जो वरण करने योग्य सार्वभौम नियम या विधान है, जो व्यक्ति के जीवन को अनुशासित करता है तथा उसे कर्त्तव्यपथ का बोध कराता है।

वैशेषिक दर्शन, (1.1.2) में महर्षि कणाद् धर्म की और व्यापक परिभाषा देते हैं—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। अर्थात धर्म वह है, जिससे जीवन के अभ्युदय अर्थात लौकिक उन्नति तथा निःश्रेयस अर्थात पारलौकिक कल्याण या मोक्ष की प्राप्ति होती हो। इस तरह धर्म दोनों लोकों को सुधारता है और जीवन के परम लक्ष्य एवं सिद्धि की ओर ले जाता है। अन्य शास्त्रों में धर्म को सद्गुणों एवं जीवनमूल्यों के रूप में परिभाषित किया गया है।

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों का वर्णन करते हुए भगवान मनु लिखते हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥

(मनुस्मृति, 10.63)

अर्थात अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इंद्रियनिग्रह—ये चारों वर्णों के सामान्य धर्म हैं। इसी तरह ऋषि याज्ञवल्क्य के अनुसार—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्॥

अर्थात अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इंद्रियनिग्रह, दान, दम, दया और शांति—ये नौ गुण धर्म के साधन हैं।

इस तरह भारतीय संस्कृति में धर्म की अवधारणा बहुत स्पष्ट एवं उदात्त रही है, जिसका उद्देश्य जीवन में सद्गुणों का विकास व चेतना का उत्तरोत्तर परिष्कार रहा है। सम्राट अशोक के त्रयोदश शिलालेख में कहा गया है कि धर्म यही है कि पाप से दूर रहें, बहुत से अच्छे काम करें। दया, दान, सत्य और पवित्रता का पालन करें।

जैन आचार्यों के मत में—**आत्मशुद्धिसाधनं धर्मः।** अर्थात जिससे आत्मा की शुद्धि हो, परमतत्त्व की अनुभूति हो, वही धर्म है। इस तरह धर्म आत्मिक उत्कर्ष, आत्मिक विकास की ओर ले जाता है, दुराचरण से बचाता है, श्रेष्ठ कर्म के लिए प्रेरित करता है।

धर्म दृष्टिकोण को उदात्त बनाता है, जीवन को आलोकित करता है, अतः धर्म मनुष्य के अंतःकरण को प्रभावित कर अनुशासित करने वाली शक्ति है। धर्म ही वह तत्त्व है, जो व्यक्ति को निर्मल और पवित्र बनाता है और उसके जीवन में नैतिक मूल्यों और आदर्शों को स्थापित करता है। जिसके साथ व्यक्ति न केवल सांसारिक, बल्कि पारलौकिक जीवन को साध लेता है और समाज में अपने सदाचरण से सद्भावना की सुगंध छोड़ देता है।

व्यक्ति को सुसभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने का कार्य भी धर्म ही करता है, जो समाज को सृजनात्मक पथ पर गतिशील करता है। धर्म की ऐसी ही उदात्त अवधारणा के आधार पर देव संस्कृति धार्मिक मूल्यों से ओत-प्रोत रही है। धर्म को जीवनमूल्यों के रूप में लिया जाता रहा है, जिसमें इसकी स्थिति पुरुषार्थ चतुष्टय में केंद्रीय धुरी की रही है।

संस्कृति की लता सदैव धर्म के मूल से लहराती रही है और उसमें सद्व्यवहार के फल-फूल लगते रहे हैं। इसी आधार पर धर्म भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी धरोहर रहा है। यहाँ आदिकाल से व्यक्ति, समाज और राष्ट्र धर्म से दिशा, ज्ञान प्राप्त करते रहे हैं और भारतीय संस्कृति में धर्म का निरंतर स्पंदन होता रहा है।

परमपूज्य गुरुदेव ने धर्म की युगानुकूल व्याख्या करते हुए इसके तीन अंग बताए हैं—पहला नीति विज्ञान, दूसरा आस्तिकता प्रधान तत्त्वदर्शन और तीसरा अध्यात्म। जिसमें आचार मीमांसा, भाव एवं विवेकपूर्ण उपासना-साधना का कर्मकांडीय पक्ष, जीवन का सम्यक दर्शन तथा इसका मर्म अध्यात्म शामिल हैं। इस तरह पूज्य गुरुदेव के अनुसार वास्तविक धर्म को अध्यात्म से अलग नहीं किया जा सकता।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार—अध्यात्म तत्त्व नहीं, वह धर्म फिर धर्म कहलाने योग्य नहीं रह जाता, इसमें तमाम तरह की कर्मकांडीय जटिलताएँ एवं दार्शनिक विकृतियाँ घुस जाती हैं। फिर मात्र लकीर पीटने या स्वामी विवेकानंद जी के शब्दों में कहें तो **लिप सर्विस** के रूप में धर्म का निर्वहन शेष रह जाता है, लेकिन जीवन-परिष्कार तथा चेतनात्मक उत्कर्ष का मूल उद्देश्य अधूरा ही रह जाता है।

ऐसा धर्म जाने-अनजाने में व्यक्ति व समाज को अधर्म के लिए प्रेरित करता है और इन्हें विनाश एवं विध्वंस की राह पर ले जाता है; जबकि धर्म का उद्देश्य तो समाज को अंतर्मुखता, शांति, प्रेम और परम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना है, उसकी भाव-संवेदना को जगाना है।

धर्म ही वह तत्त्व है, जो उचित-अनुचित कर्म का बोध कराता है। क्या ग्राह्य है? क्या वर्जनीय? इसकी समझ देता है। पाप-पुण्य, सही-गलत, अच्छाई-बुराई के अंतर को स्पष्ट करता है। सार रूप में धर्म नीर-क्षीर विवेक शक्ति को विकसित करता है तथा जीवन में एक दिशासूचक प्रेरक शक्ति का काम करता है।

भारत में धर्म को व्यापक दृष्टि से देखा जाता रहा है, न कि संप्रदाय की संकीर्ण दृष्टि से। धर्म के ऐसे सर्वांगीण उत्कर्ष एवं मानव हितकारी स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए आदि शंकराचार्य ने गीताभाष्य में लिखा है—

जगतः स्थितिकारणं प्राणिनां साक्षात् अभ्युदय निःश्रेयसहेतुः य स धर्मो ब्राह्मणाद्यैः वर्णिभिराश्रमिभिश्च श्रेयोऽर्थिभिरनुष्ठीयमानः।

अर्थात जो इस जगत् की स्थिति का कारण एवं प्राणियों के अभ्युदय और मोक्ष का साक्षात् हेतु है, श्रेय के अभिलाषी ब्राह्मणादि वर्ण और आश्रम वाले लोग जिसका आचरण करते हैं, उसका नाम धर्म है। इस तरह धर्म सबको धारण करने वाला, सार्वभौम, सबका हितैषी, कल्याणकर्त्ता एक शाश्वत नीतिदर्शन है, जबकि संप्रदाय एक मान्यता विशेष, एक मार्ग का नाम, जिसे मानते हुए व्यक्ति एक चरम लक्ष्य तक पहुँच जाए।

देव संस्कृति ने धर्म को इसी अर्थ में लिया है, यही कारण है कि इसके गर्भ में सभी मत-संप्रदाय-मतांतर एवं मान्यताएँ पनपते-विकसित होते चले गए। यह धर्म तत्त्व ही भर्तृहरि के शब्दों में, मनुष्य को पशु से अलग करता है।

इसी आधार पर मनुष्य इस धरती का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और धर्म संस्कृति की सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई रहा है। साथ ही धर्म सुख का मूल माना गया है।

सुखस्य मूलं धर्मः। *(चाणक्य सूत्र—1)*

अर्थात बिना धर्म के सुख-शांति संभव नहीं। धर्म ही मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाता है, मनुष्यत्व को प्राप्त कराता है। इसी आधार पर संभवतः स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि धर्म ही इस राष्ट्र के हृदय का मर्मस्थल और मेरुदंड है तथा वह नींव है, जिस पर राष्ट्ररूपी इमारत खड़ी है। हमारे राष्ट्र की जीवनीशक्ति धर्म में केंद्रित है। एक आध्यात्मिक अनुभूति की ओर ले जाने वाले तत्त्व के रूप में, अंतःकरण की प्रेरणा, नैतिक दिशाबोध, आत्मबल के रूप में धर्म भारतीय संस्कृति की नींव रहा है और भारतीय संस्कृति में धर्म का स्थान अप्रतिम रहा है।

मनुष्य के संपूर्ण जीवन दर्शन को समाहित करे, ऐसा धर्म जीवन का सर्वोपरि मूल्य रहा है तथा भारतीय संस्कृति के स्वरूप को निर्धारित करने में इसकी निर्णायक भूमिका रही है।

आज हमें उसी धर्म की आवश्यकता है, जो हमें जीवन की सम्यक समझ देकर मानव धर्म का बोध कराए। आध्यात्मिक तत्त्व में मनुष्य को प्रतिष्ठित कर विभिन्न संस्कृति-समाज के बीच संवाद-सेतु के रूप में एक समाधानकर्त्ता की भूमिका में आगे आए।

धर्म व्यक्ति को अंतर्मुखी बनाकर उसमें त्याग, संवेदना, पारस्परिक सद्भाव का जागरण एवं विकास करे। समय इस धर्म-संवेदना को जीवन में धारण कर इसके तत्त्वज्ञान को घर-घर तक पहुँचाने का है, जिससे आस्था संकट से जूझ रही मानवता शांति, समाधान और प्रकाश की सतयुगी संभावनाओं की ओर आगे बढ़ सके। ❑

टॉल्स्टॉय केवल एक प्रसिद्ध साहित्यकार ही नहीं, वरन एक उच्चकोटि के संत भी थे। एक बार वे एक सूखाग्रस्त इलाके से निकल रहे थे। भूखे, पीड़ित व बेसहारों को देखकर उनके हृदय में करुणा उमड़ आई और उनके पास जो भी कुछ था, वो उन्होंने जरूरतमंदों में बाँटना प्रारंभ कर दिया। किसी को उन्होंने पैसे दिए तो किसी को खाना और अंत में एक व्यक्ति को उन्होंने अपना कोट और स्वेटर भी उतारकर दे दिया।

सब देने के पश्चात जब वे आगे बढ़े तो एक विकलांग व्यक्ति उनके पास आया। उसे देखकर टॉल्स्टॉय की आँखों में आँसू आ गए और वे बोले—"भाई! मुझे माफ करना। तुम्हें देने को अब मेरे पास कुछ भी नहीं है।" यह सुनकर विकलांग व्यक्ति ने उन्हें गले से लगा लिया और बोला—"आप ऐसा न बोलें। आज आपने जो प्रेम दिया है, वो बहुतों के पास देने को नहीं है।" टॉल्स्टॉय ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उस दिन जो संतोष उन्हें मिला, वैसा उन्हें कभी अनुभव नहीं हुआ, पीड़ितों को सहारा देना ही पुण्य और श्रेष्ठ कर्म है।

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

परिवार—एक पाठशाला

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह मौलिकता है कि उनमें संवेदना एवं संकल्प के स्वर समन्वित रूप से महसूस किए जा सकते हैं। उन सारे विषयों पर वंदनीया माताजी के उद्बोधन एक दिशानिर्देश की तरह प्रतीत होते हैं, जो विषय आज एक गंभीर सामाजिक समस्या का रूप ले चुके हैं। भटकते व्यक्ति एवं टूटते परिवार एक ऐसी ही समस्या है, जिसका समाधान वंदनीया माताजी के द्वारा प्रस्तुत उद्बोधन में प्रदान किया गया है। वे कहती हैं कि परिवार वस्तुतः एक पाठशाला की तरह है, जिसमें स्वर्गीय वातावरण का निर्माण करने के लिए हमें उन सारे गुणों को अपने भीतर विकसित करना पड़ता है, जिन्हें हम पारिवारिक वातावरण में पनपते देखना चाहते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

घर एक पाठशाला

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

बेटियो! आत्मीय प्रज्ञा परिजनो! घर एक पाठशाला होती है। घर वह उपवन होता है, जो तरह-तरह के फूलों से भरा होता है। फूल से मतलब है—हमारे बच्चे। बच्चे वो फूल हैं, जो कि खुद भी सुगंधित होते हैं और दूसरों तक खुशबू फैलाने में भी वे समर्थ होते हैं। अब किसकी बात रह जाती है? माँ का पाठ रह जाता है। माँ जिस ढंग से बच्चों को उस घर की पाठशाला में शिक्षण देती है; वह शिक्षण आजीवन काम आता है। अपने बच्चों को मदालसा ने शिक्षण दिया था। एक को राजर्षि बनाया था। एक को देवर्षि बनाया था। उन्होंने अपने सभी बच्चों को तेजस्वी बनाया था और कहा था—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि,
संसारमाया, परिवर्जितोऽसि।
संसारस्वप्नं त्यजमोहनिद्रां
मदालसावाकमुवाच पुत्रम्॥

उन्होंने कहा कि हे पुत्र! तू निर्विकार की तरह से जी। संसार तो मिथ्या और माया है। इसमें यदि तू लिप्त रह गया, तो तू संसार को समझ नहीं सकेगा। भगवान ने जो उत्तरदायित्व देकर के मनुष्य को भेजा है, उसको तू भूल जाएगा। आगे चलकर के वे बच्चे जो बने, उसका हमारे ग्रंथों में उदाहरण है। यह किसने बनाया था? यह मदालसा ने अपने बच्चों को बनाया।

माँ का कर्त्तव्य

माँ का कर्त्तव्य है कि बच्चे को सही दिशा दे और उसको एक अच्छा और सुयोग्य नागरिक बनाए। माँ ही संतान को ऐसा बना सकती है। यह पिता नहीं कर सकता। पिता साधन जुटा सकता है और माँ संस्कार दे सकती है। माँ ने अपना दूध पिलाया है और उस दूध से बच्चों में संस्कार दे सकती है। कौन देगी? एक गुणवती माँ ही दे सकती है। पहले माँ को पढ़ना पड़ता है, फिर वह बच्चे को पढ़ाती है। माँ गर्भकाल से ही बच्चे को पढ़ाती है।

इसका उदाहरण भी सामने आता है। सुभद्रा ने अभिमन्यु को गर्भावस्था में ही शिक्षण दिया था, जो कि चक्रव्यूहभेदन जितना उसने सीखा था, उसमें वह सफल हुआ और जो वह

नहीं सीख पाया, उसमें वह असफल रहा और मारा गया। यह कथा महाभारत में आती है। सुनीति ने ध्रुव को बनाया और आगे चलकर वह भक्त हुआ और भगवान की गोद, उस परमपिता की गोद में जा बैठा।

बेटे! यह संस्कार किसने दिए थे? यह माँ ने दिए थे। शकुंतला ने भरत को बनाया था और उसी के नाम से हमारे राष्ट्र का नाम भारतवर्ष पड़ा। भरत वह था, जो सिंह से लड़ने के लिए बचपन में ही समर्थ हो गया था और उसने सिंह के जबड़े को पकड़कर उसे पछाड़ दिया था और जीत गया था। यह संस्कार और सामर्थ्य किसने दिए? ये भावनाएँ, ये संस्कार और ये सिद्धांत, साहस कहाँ से आए? वे सब माँ से ही आए।

माँ ने ही इस ढंग से लालन-पालन किया और शिक्षण भी माँ ने ही दिया। जीजाबाई ने शिवाजी को जो संस्कार दिए थे, वे जीवन भर काम आए। शिवाजी के सामने एक मुसलिम महिला लाई गई। सज-धज करके वह उनके सामने आई। उन्होंने कहा कि आज हम शिवाजी का मनोबल गिरा करके ही रहेंगे; लेकिन जब शिवाजी ने उस खूबसूरत महिला को देखा, तो उनकी आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा कि यदि मेरी माँ जीजाबाई ऐसी सुंदर होती, तो मैं भी ऐसा ही सुंदर हुआ होता। वे बच्चे के संस्कार ही थे।

ऐसे ही संस्कार दीनबंधु के थे, जिन्होंने एक हरिजन के बालक को पीट दिया। जब पीट दिया, तो घर आए और घर में देखा कि उनकी माँ के पास वही हरिजन बच्चा बैठा हुआ है और माँ खाना खिला रही है। उसे नहलाया-धुलाया, काजल लगाया और खाना खिलाया। जब दीनबंधु ने यह सब देखा, तो उन्होंने अपनी माँ से कहा—इसको छुओ मत, छूने से पाप लगेगा; क्योंकि यह अछूत है, तो माँ ने अपने बच्चे दीनबंधु को लताड़ा और कहा कि जो मार इसको पड़ी है, वही मार तेरे ऊपर पड़े, तब? यह मेरा बच्चा है और तुझसे ज्यादा प्यारा है।

सुधार का शिक्षण

दीनबंधु ने यह सुना, तो उनकी आँखें खुल गईं। उनकी माँ ने उनको दंड दिया। यह क्या है? यह सुधार की आँखें हैं, सँभालने की आँखें हैं। पढ़ाने की आँखें हैं और शिक्षण की आँखें हैं, संस्कार देने की आँखें हैं। यह एकपक्षीय नहीं होता, बच्चे को प्यार किया ही जाना चाहिए। प्यार तो करना ही चाहिए, लेकिन साथ-ही-साथ में उसको संस्कार भी देने चाहिए; क्योंकि यही हमारी भावी पीढ़ी है, जो आगे चलकर के हमारे राष्ट्र को समृद्ध बनाएगी। राष्ट्र के निर्माण में हमारे यही संस्कारी बच्चे काम आएँगे। परिवार की पाठशाला में बच्चों को माँ के संस्कार मिलना बहुत ही आवश्यक है।

नेपोलियन और उसकी बहन, दोनों पढ़ने जाया करते थे। एक दिन एक अमरूद वाला, अमरूद बेचने के लिए आया और बहन ने एक लकड़ी से उसकी टोकरी नीचे गिरा दी। वह बेचारा गरीब था। वह रोता हुआ, उनकी माँ के पास पहुँचा। उसने कहा कि माँ मेरे सारे अमरूद आपके बच्चों ने गिरा दिए। माँ ने कहा कि बेटे यह पैसे ले जा और अपने घर जा। वह तो पैसा लेकर चला गया; लेकिन जब दोनों भाई-बहन घर आए, तब माँ ने दोनों बच्चों का एक सप्ताह का नाश्ता बंद कर दिया।

कोई दूसरा हमारे प्रति बुराई करे अथवा निंदा करे, उद्वेगजनक बात कहे तो उसको सहन करने और उसे उत्तर न देने से वैर आगे नहीं बढ़ता। इसका सबसे अच्छा उत्तर है—मौन। जो अपने कर्त्तव्य कार्य में जुटा रहता है और दूसरों के अवगुणों की खोज में नहीं रहता है, उसे सदा आंतरिक प्रसन्नता रहती है।

जीवन में उतार-चढ़ाव सदा आते ही रहते हैं। इसलिए हँसते रहो, मुस्कराते रहो। ऐसा मुख किस काम का, जो हँसे नहीं, मुस्कराए नहीं। जो व्यक्ति अपनी मानसिक शक्ति स्थिर रखना चाहते हैं, उन्हें दूसरों की आलोचनाओं से चिढ़ना नहीं चाहिए। *—परमपूज्य गुरुदेव*

जब नेपोलियन ने पूछा—''माँ मैंने क्या किया? बहन ने तो उसके अमरूद गिराए थे, वह तो दोषी है, पर मैं दोषी कहाँ हूँ?'' माँ ने उत्तर दिया—''बेटे! तू उसका बड़ा भाई है, तो उसे रोक सकता था; लेकिन तूने अपनी बहन को गलत काम करने से रोका नहीं। इसका मतलब यह है कि इस कार्य में दोषी तू भी है, तो दंड तुम दोनों को ही मिलना चाहिए और दंड यह है कि तुम्हारा नाश्ता बंद।'' यह होता है—बच्चों को शिक्षण और संस्कार देना। ऐसे संस्कार बच्चों में आजीवन बने रहते हैं।

संपत्ति नहीं, संस्कार दें

बेटियो! बच्चे गीली मिट्टी की तरह होते हैं और साँचा हैं—माता-पिता। जैसा घर का वातावरण होगा, उसी के अनुसार बच्चे बनेंगे। जिन घरों में लड़ाई-झगड़ा, कर्कशता रहती है, उन घरों में बच्चे उच्छृंखल हो जाते हैं। जब हमारे बच्चे उच्छृंखल और उद्दंड रहेंगे, तो हम इनसे क्या आशा करेंगे? हमारे राष्ट्र की नींव जब इन्हीं बच्चों पर आधारित है, तो जब नींव ही नहीं सँभाली गई, तो ईंटें कहाँ रहेंगी? ऐसा कमजोर मकान तो गिर जाएगा, ढह जाएगा और बिखर जाएगा। आवश्यकता इस बात की है कि माता और पिता दोनों बच्चों को संपत्ति नहीं, अच्छे संस्कार दें।

सीता जी जब वाल्मीकि के आश्रम में रहीं और वहीं लव-कुश पैदा हुए तो सीता ने लव-कुश को वह संस्कार दिए, शौर्य और साहस उन वीर बालकों को दिए कि किसी के सामने उन्होंने शीश नहीं झुकाया; बल्कि अनीति से लड़े। उन्हें यह नहीं पता कि राजा राम हमारे पिता हैं। उन्हें यह मालूम था कि सीता उनके द्वारा ठुकराई गई हैं। उनका परित्याग किया गया है। जंगल में भेजा गया है, तो हम इनका मुकाबला करेंगे। एक ऐसी सती-साध्वी नारी को इन्होंने घर से क्यों निकाला? यह हिम्मत किसने दी? यह हिम्मत माँ ने दी।

माँ ने जंगल में रहते हुए भी दोनों बच्चों को गढ़ा और ऐसे श्रेष्ठ साहसपूर्ण संस्कार दिए। इसी तरह से कण्व ऋषि के आश्रम में रहकर शकुंतला ने भरत को जन्म दिया। बच्चों को छोटेपन में सिखाया जाता है? हाँ बेटे, सिखाया जाता है, उनको पढ़ाया जाता है, संस्कार दिए जाते हैं। कथा-कहानियों के माध्यम से छोटे बच्चे सीखते हैं। माँ-बाप के आचरण से सीखते हैं। जैसे माता-पिता होंगे, वैसी ही उनके बच्चों में भावनाएँ काम करेंगी।

एक परिवार था। उस परिवार में स्वभावगत कुछ कमियाँ थीं। बच्चों ने देखा कि उनके माता-पिता अपने बुजुर्ग माता-पिता को मिट्टी के बरतन में खाना खिलाया करते थे। वही मिट्टी के बरतन धोये और उठाकर रख दिए। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के बच्चों ने यही सब देखा। तीसरी पीढ़ी जब आई, तो उसमें कुछ बच्चे समझदार थे। उन्होंने जब देखा कि हमारे माता-पिता ने अपने माता-पिता को घर से निकाल दिया है। पिता को जंगल में छोड़ आए, मार आए और माँ को मिट्टी के बरतन में खाना देने लगे। बच्चों ने देखा कि हमारे माता-पिता ऐसा कर रहे हैं, तो बच्चे कहीं से मिट्टी के बरतन इकट्ठा करके लाए।

पिता ने पूछा—''यह क्या कर रहे हो? ये कहाँ से लाए?'' बच्चों ने कहा—''अपने माता-पिता के लिए लाए हैं। जब हम बड़े हो जाएँगे, तो आपको इन्हीं बरतनों में खाना खिलाया करेंगे और हम भी इसी तरीके से आपको मारेंगे, जिस तरीके से आपने अपने पिता को मारा है।'' बच्चे बड़े हो गए, तो बोले—''चलिए पिताजी! आपको जंगल में घुमा लाएँ।'' पिता समझ गए कि जो हमने किया है, वही हूबहू ये हमारे लिए करेंगे। हमने अपने पिता को जंगल में ले जाकर मारा था, अब ये भी यही करेंगे।

पिता चला तो गया, पर जाकर के एक जगह रुक गया और उसने कहा—''बेटे! मैं यह तो नहीं कहता कि तुम मुझे मत मारो; क्योंकि जब मैंने अपने पिता को मारा, तो तुम भी मुझे मारोगे। यह कोई गुनाह नहीं है। तुमने सीखा तो हमसे ही है, पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि यह परंपरा ही पड़ जाए। मैं चाहूँगा कि यह परंपरा बंद हो जाए। इस दृष्टि से तुम हमें मारो मत।'' उन्होंने कहा कि आपने पहले नहीं सोचा था? उन्होंने कहा कि पहले जो गलती हमने की है, वह गलती तुम्हें नहीं करनी चाहिए। तो यह सबक हमारे बच्चों को कौन सिखाएगा? यह माता-पिता का उदाहरण है। बच्चों को सिखाना चाहिए कि अपने बड़ों को प्रणाम करें। उन्हें अग्निहोत्र करना सिखाना चाहिए। अग्निहोत्र में पहले पाँच ग्रास बलिवैश्व करें, तब बच्चों को भोजन दें। यह संस्कार कौन सिखाएगा? माताएँ देंगी। प्रणाम करने का, सही ढग से बोलने का, सत्य बोलने का और दूसरों के साथ में अच्छा व्यवहार करना। यह सब माताएँ ही सिखाएँगी।

कहानियों से दें शिक्षण

ईसप की कहानियाँ कुछ ऐसी ही हैं। ईसप बहुत कुरूप थे; लेकिन उन्हें सम्मान मिला। कैसे सम्मान मिला? उन्होंने छोटे-छोटे बच्चों को कहानियाँ सुनाना शुरू किया। कहानियाँ सुनाकर के हम उनका मनोरंजन कर सकते हैं। उनका शिक्षण कर सकते हैं। जो हमारी ऐतिहासिक कहानियाँ हैं, धार्मिक कहानियाँ, सामाजिक सुधार की कहानियाँ बच्चों से संबंधित हैं, उन्हें सुनाने की बच्चों में आदत डालनी चाहिए; लेकिन आज हम आदत डाल देते हैं कि मनोहर कहानियाँ पढ़िए, चंदामामा पढ़िए। इनमें कुछ नहीं होता, सिवाय इसके कि भूत-पलीद की कहानियों से हम बच्चों में संस्कार बिगाड़ते हैं। हम बच्चों को बनाते नहीं हैं। बनाएगा कौन? माँ-बाप ही उनको बना पाएँगे। कुंती ने अपने बच्चों को बनाया था।

एक दिन कुंती ने जंगल में अपने बच्चे को भेजा था; जबकि उस गाँव के हर घर से राक्षस के पास एक व्यक्ति भेजा जाता था। यह कहानी आप सभी जानते हैं। अपने आश्रयदाता को बचाने के लिए कुंती ने भीम को भेजा; क्योंकि पाँचों में से एक को जाना था। भीम ने कहा—"माँ, हम पाँच में से एक कम हो जाएगा, तो क्या? आपके पास, आपके चार बच्चे तो रहेंगे ही।" यह संस्कार किसने दिए थे? यह संस्कार कुंती ने दिए थे। कुंती ने पाँचों पुत्रों को श्रेष्ठ संस्कार दिए थे। तीन बच्चे कुंती के थे और दो बच्चे माद्री के थे। पाँचों बच्चों को बिना भेदभाव के कुंती ने ही संस्कार दिए थे। कुंती जहाँ समझती थी कि जेठानी मेरी विरोधी है और जेठ ने भी कितना तबाह किया था, फिर भी गांधारी जब तप करने जा रही थी, तो कुंती ने कहा कि आप अकेली नहीं जाएँगी, साथ में मैं भी चलूँगी और दोनों जंगल में चली गईं।

जैसा साँचा, वैसा स्वरूप

बात मैं बच्चों की कर रही हूँ कि बच्चों को जो भी संस्कार देगी, वह माँ देगी। माँ के जो संस्कार होंगे, वही बच्चों में विद्यमान होंगे। माता-पिता को ही अपने बच्चों को संस्कार देना चाहिए। बच्चे हमारी गीली मिट्टी हैं और माता-पिता साँचा हैं। जैसा चाहेंगे, उन बच्चों को बना लेंगे। साँचा होता है और मिट्टी होती है। कबूतर के साँचे से कबूतर बन जाता है। बंदर के साँचे से बंदर बन जाता है।

जैसा साँचा, वैसा आकार—कभी क्या बन जाता है, तो कभी क्या बन जाता है? मिट्टी तो एक ही होती है, लेकिन साँचे अलग-अलग होते हैं, तो वही स्वरूप निखर करके आता है। नहीं साहब! हमारे तो बच्चे हैं, पर लड़कियाँ हैं, लड़के तो हैं ही नहीं। मनु के भी लड़कियाँ थीं। इला का नाम तो आपने सुना होगा। वह ब्रह्मवादिनी थी और भी कितनी ही कन्याएँ हुई हैं? घोषा, लोपामुद्रा आदि कहाँ तक गिनाएँ? ढेर सारी कन्याएँ एक-से-एक बढ़िया और संस्कारी हुई हैं। उन्हें उनके माता-पिता ने संस्कार दिए थे। नहीं साहब! अब तो हमारे यहाँ बच्चों की लाइन लगेगी। लाइन लगेगी, तो बेटे, कुसंस्कारी बच्चे ही पैदा होंगे। बच्चों की संख्या कम रखिए और उन्हें संस्कार दीजिए।

यतो वाचो निवर्तन्ते।
अप्राप्य मनसा सह।
आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्।
न बिभेति कदाचनेति।
तस्यैष एव शारीर।
आत्मा यः पूर्वश्य।

—तैत्तिरीयोपनिषद् 2/4

अर्थात जहाँ से मनसहित वाणी आदि इंद्रियाँ उसे पाकर लौट आती हैं, उस ब्रह्मानंद को जानने वाला पुरुष सदा निर्भय है तथा उस मनोमय पुरुष की आत्मा वही परमात्मा है, जिसका वर्णन सभी करते हैं।

भगवान शिव के दो बच्चे थे। राम, लक्ष्मण के दो-दो बच्चे थे। भरत-शत्रुघ्न के भी दो-दो बच्चे थे। तालाब में घुसकर ही तैरना सीखा जाता है और किनारे पर बैठकर के तो केवल आनंद लिया जा सकता है। जब तक समुद्र में डुबकी नहीं लगाएँगे, तो बहुमूल्य रत्न कैसे पा सकेंगे? केवल मन को समझाना ही रह जाएगा। बच्चे पैदा तो किए; लेकिन उनको संस्कार नहीं दिए, तो वे पृथ्वी का भार होंगे, समाज के ऊपर भार होंगे। वे कुसंस्कारी होंगे, डकैत होंगे, चोर होंगे, जुआरी होंगे, अय्याश होंगे, शराबी होंगे। क्यों होंगे? क्योंकि उन्हें संस्कार नहीं दिए गए।

बच्चों को संस्कार दीजिए और एक से बढ़कर एक रत्न पाइए। वे कैसे होंगे? श्रवण कुमार जैसे होंगे, जो माता-

पिता को काँवड़ में बिठाकर के कंधे पर लेकर तीर्थयात्रा कराने ले गए थे। सारी जिंदगी उन्होंने अपने माता-पिता की सेवा की। दुष्ट के तो दुष्ट ही बच्चे होते हैं। अपवादस्वरूप कोई अच्छा हो, तो अलग बात है। रावण के तो जैसे होने चाहिए, वैसे ही थे। रावण का सारा परिवार दुष्ट ही था। हालाँकि उनके पिता ऋषि थे। वे उन्हें संस्कार देने में समर्थ नहीं हुए। रावण में माता के संस्कार थे। सभी एक-से-एक दुष्ट, एक-से-एक कुसंस्कारी, एक से बढ़कर एक दुराचारी थे। सारी राक्षस जाति कुसंस्कारी थी।

रावण ने भाई को ठुकरा दिया था और शाहजहाँ को औरंगजेब ने ठुकरा दिया था। किसी के बेटे ने पिता को कैद कर लिया, किसी ने मौत के घाट उतार दिया। ऐसा क्यों? क्योंकि जो संस्कार बच्चों को देने चाहिए थे, वे संस्कार दिए नहीं। यदि संस्कार मिलते हैं, तो वे संत बन जाते हैं। संत ज्ञानेश्वर चार बहन-भाई थे। एक बहन थी और तीन भाई थे। उनके त्याग में कोई कमी नहीं थी। सब एक से बढ़कर एक थे। एक कदम बड़ा भाई था, उसी के बाद तीनों बच्चे भाई का अनुशरण करते थे। ये संस्कार होते हैं। माता-पिता की देन होते हैं। वे जैसे होंगे, वैसे ही बच्चे बनेंगे। इसमें कोई भी शक नहीं है। बच्चों को बनाने वाला माता-पिता के अलावा और कोई भी नहीं हो सकता।

दाराशिकोह को उसके भाई ने ही मारा था। राम और भरत का स्नेह भाई-भाई में प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है, नसीहत है। वह नसीहत कहाँ से आई? किससे आई? वह माता-पिता से आई। कौशल्या ने राम के अंदर दी और कैकेयी ने भरत के अंदर। हालाँकि बाद में कैकेयी पीछे हो गई। शुरू में तो उसने कहा था कि राम और भरत मेरी दोनों आँखें हैं। बाद में लोभ और लालच ने उसे अंधा कर दिया था, इसलिए उसने अपने बेटे के लिए राजगद्दी माँगी थी और राम के लिए वनवास माँगा था।

सुमित्रा ने अपने बच्चों के अंदर श्रेष्ठ भावनाएँ भरी थीं और कहा था लक्ष्मण से कि राम यदि वन जा रहा है और तू अयोध्या में रहेगा। तुझे शरम नहीं आएगी। तेरे भाई जो पितास्वरूप हैं, तेरी भाभी माँस्वरूप हैं, उनके साथ जा और उनकी सेवा करना। मैं समझूँगी कि तूने मेरी ही सेवा की और सारे अयोध्यावासियों की सेवा की। ये भावनाएँ किसने दी थीं? ये संस्कार किसने दिए थे? ये दिए थे उनकी माँ ने और पिता ने। दोनों ने लक्ष्मण को संस्कार दिए थे।

बुद्ध का पुत्र राहुल था। यशोधरा ने उसे संस्कार दिए थे और बुद्ध के तप और त्याग से राहुल ने सब सीखा था। अशोक के दो बच्चे थे। एक का नाम संघमित्रा और एक का महेंद्र था। उन्होंने बौद्धधर्म का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने प्रचार ही नहीं किया; बल्कि बुद्ध भगवान को समर्पित हो गए। उन्होंने कितना कार्य किया? वह आप सबको मालूम है। इसी तरीके से महाराणा प्रताप के हाथ में रोटी थी, दोनों बच्चों की रोटी और उनकी रोटी भी बिलाव ले गया; लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। बच्चों ने कहा—"पिताजी! ले जाने दो, हमको भूख नहीं लगी है। हम बेभूख हैं, जो दुश्मन हमारे आगे खड़ा है, हमें तो केवल दुश्मन ही दिखाई पड़ रहा है और उससे जूझने की हिम्मत पिताजी हममें है। हम भूखे नहीं हैं।" उनकी आँखों में आँसू आ गए और वे पुन: पूरी शक्ति के साथ उठ खड़े हो गए। ऐसे संस्कार उनके बच्चों में महाराणा प्रताप के और उनकी पत्नी के दिए हुए थे, जो कि रोटी की तरफ न जाकर के उस लक्ष्य की ओर गए।

ऐसा महान वातावरण बनाएँ

बच्चो! ऐसा ही महान वातावरण हमको बनाना चाहिए। हमको बच्चों में संस्कार डालने चाहिए। उन्हें सद्गुणी स्वभाव का बनाना चाहिए। परिवार में घुल-मिलकर कैसे रहना चाहिए? यह उन्हें सिखाना चाहिए। आपस में कहा-सुनी हो भी, तो भी बच्चों के सामने वह प्रदर्शन मत करिए। अपने घर के वातावरण को सकारात्मक बनाइए। अपने से बड़ों को आप श्रद्धा से देखिए, उनका सम्मान कीजिए, ताकि बच्चे भी आपका सम्मान करें। समाज का सम्मान करें। समाज के, राष्ट्र के कुछ काम आएँ। हमें उम्मीद है कि हमारे परिजन इस ओर ध्यान देंगे। बच्चों को कहानियाँ सुनाएँगे।

इसी उद्देश्य के लिए, परिवार को बनाने के लिए, बच्चों को संस्कारी बनाने के लिए, समाज को बनाने के लिए अनेक कहानियाँ, अनेक उदाहरणों सहित प्रज्ञापुराण की रचना गुरुजी ने की और सबके सामने रखा। इसके लिए यह मानकर चलिए कि गुरुजी ने इतनी मेहनत, इतना श्रम किया है। इसको बनाने के लिए यह श्रम उन्होंने अपने परिजनों के लिए, अपने बच्चों के लिए और भावी पीढ़ी के निर्माण के लिए किया है। उसे आप सभी को सुनना चाहिए।

जब आपके गुरुदेव ने इतनी मेहनत की है, तो फिर उसको आप सार्थक करिए, उसे दूसरों को सुनाइए। आपको

तो पका-पकाया मिल गया है। आपको कोई मेहनत नहीं करनी है। बच्चों को केवल पढ़ना और सुनना भर है। बच्चों को एक घंटे लेकर के बैठिए; ताकि आपके घर का वातावरण अच्छा बने, संस्कारी बने और इससे लोग भी प्रेरणा लें। इसमें आपको अपनी सूझ-बूझ का परिचय भी देना होगा। आशा है कि इसमें जो कहा गया है, उस पर आप ध्यान देंगे।

बेटियो! अपने बच्चों को संस्कार दीजिए। धन की आवश्यकता नहीं है। आज की दौड़ में, भौतिकयुग में जो धन की दौड़ चल रही है कि बच्चों को संपत्ति दी जानी चाहिए। बच्चों को कुसंस्कार की ओर से मोड़ना चाहिए, जैसे—सिनेमा की ओर, शृंगार की ओर, बनावटीपन की ओर, फजूलखर्ची की ओर से उन्हें मितव्ययिता सिखाइए, उन्हें श्रमशील और संस्कारी बनाइए। पहले गुरुकुल पद्धति थी और बच्चों को गुरुकुलों में पढ़ने के लिए भेजा जाता था। इसका मतलब क्या होता था? उन बच्चों को संस्कारी बनाने के लिए ऋषियों के आश्रम में भेजते थे। राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के आश्रम में भेजा था; ताकि वे आगे चलकर सारे राष्ट्र को सँभाल सकें और उन्होंने सँभाला भी। बच्चों के संस्कार सबसे ज्यादा जरूरी हैं, अपेक्षा इसके कि उनके लिए, आगे की पीढ़ी-दरपीढ़ी के लिए सोचते रहें और संपत्ति इकट्ठा करते रहें और उनके लिए न मालूम क्या-क्या आशाएँ सँजोकर रखें? यह जरूरी नहीं है। जरूरी हैं उनके संस्कार। इसी पर आप ध्यान दीजिए। जैसा कि अभी मैंने कहा है। आशा है आप इस ओर ध्यान रखेंगे और उस पर अमल भी करेंगे।

॥ ॐ शांतिः ॥

सिकंदर ने भारत पर आक्रमण कर दिया। पुरु का सामना करने से पूर्व कई छोटे-बड़े राज्यों से उसे युद्ध करना पड़ गया। एक छोटा-सा राज्य मार्ग में पड़ा और उसके राजा के पास बहुत छोटी-सी सेना थी। तब भी वह सिकंदर से युद्ध करने रणक्षेत्र में कूद पड़ा। वही हुआ, जिसका भय था; राजा युद्ध हार गया। विजय के पश्चात राजा को सपरिवार एवं कुलगुरु के साथ सिकंदर के समक्ष लाया गया। सिकंदर ने क्रोध में कुलगुरु से कहा—"मुझे बताया गया है कि तुमने राजा को सीख दी कि वह युद्ध करे। जब पराजय निश्चित थी तो ऐसी मूर्खतापूर्ण शिक्षा किस काम की?"

कुलगुरु ने उत्तर दिया—"सिकंदर! निश्चित तो मृत्यु भी है तो क्या मनुष्य जीना भी छोड़ दे। अरे! मैंने राजा को यही सिखाया कि जियो भी सम्मानपूर्वक और मरो भी सम्मानपूर्वक। मुझे गर्व है कि राजा हारा जरूर, पर अपने सम्मान की रक्षा करते हुए। मनुष्य के साथ जय-पराजय नहीं, गौरव व सम्मान जाता है।" सिकंदर को तब ही अनुभव हो गया कि भारतवासी किसी और मिट्टी के बने हैं।

विश्वविद्यालय परिसर से—203

पूज्य गुरुदेव की प्राण-चेतना से तरंगित विश्वविद्यालय

पूज्य गुरुदेव की संकल्पना का आधार लिए व उन्हीं की प्राण-चेतना से सदैव तरंगित देव संस्कृति विश्वविद्यालय उन्हीं दिव्यसत्ता के आशीष से नित-निरंतर न केवल ऐतिहासिक कदम उठा रहा है, वरन अपने वर्तमान स्वरूप में उन शाश्वत मूल्यों की भी स्थापना तीव्रता से करते चले जा रहा है जो आने वाले भविष्य को उज्ज्वल संभावनाओं से भर देने वाले हैं।

अपनी विकासयात्रा में एक नया अध्याय जोड़ते हुए विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में भारतीय डाक विभाग के द्वारा एक नए शाखा डाकघर का शुभारंभ किया गया। इस अवसर पर डाक विभाग, देहरादून के निदेशक डॉ० सुनील राय उपस्थित रहे। उन्होंने कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं डाक विभाग—दोनों विशुद्ध रूप से सेवाकार्यों को करने के लिए तत्पर रहते हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की प्रशंसा करते हुए श्री राय ने कहा कि सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत को सहेजने एवं उसे युवा पीढ़ी तक पहुँचाने में जिस भूमिका का निर्वहन देव संस्कृति विश्वविद्यालय के द्वारा किया गया है, वह एक अभूतपूर्व व ऐतिहासिक कार्य है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय की इसी परंपरा को आगे बढ़ाने का कार्य डाक विभाग भी करेगा।

इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि डाक विभाग के द्वारा शांतिकुंज के स्वर्ण जयंती अवसर पर डाक टिकट को जारी करना एवं परिसर में अपनी शाखा को खोलना एक अत्यंत ही सौभाग्यशाली क्षण है। यह एक उल्लेखनीय उपलब्धि है कि इसी वर्ष भारत सरकार के द्वारा शांतिकुंज की स्मृति में एक डाक टिकट भी जारी किया गया और इसी वर्ष भारतीय डाक विभाग ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय का चयन इस शाखा डाकघर की शुरुआत करने के लिए किया। इस अवसर पर शांतिकुंज के व्यवस्थापक श्री महेंद्र शर्मा जी एवं कुलपति श्री शरद पारधी जी विशेष रूप से उपस्थित रहे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के द्वारा प्राप्त की जा रही राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय उपलब्धियों के क्रम में विगत दिनों एक गौरवशाली अध्याय तब जुड़ा, जब आयुष मंत्रालय, भारत सरकार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्री परिवार के संयुक्त तत्त्वावधान में भगवान श्रीनाथ जी की पुण्य नगरी नाथद्वारा में योग महोत्सव का आयोजन किया गया।

इस शुभ अवसर पर राजस्थान विधान सभा के अध्यक्ष डॉ० सी०पी० जोशी जी, राजस्थान सरकार के माननीय मंत्री श्री प्रमोद भाया जी एवं डॉ० सुभाष गर्ग जी के अतिरिक्त देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी भी उपस्थित रहे। राजस्थान सरकार द्वारा इस अवसर पर यह घोषणा की गई कि राज्य सरकार गायत्री परिवार के साथ मिलकर एक विश्वस्तरीय समग्र स्वास्थ्य केंद्र नाथद्वारा में स्थापित करेगी।

उल्लेखनीय है कि नाथद्वारा परमपूज्य गुरुदेव द्वारा घोषित प्रथम 24 शक्तिपीठों में से एक था, परंतु स्थानाभाव के कारण उस शक्तिपीठ को राजसमंद में स्थापित किया गया। पूज्य गुरुदेव की दिव्य प्रेरणा से ऐसी परिस्थितियाँ पुनः बन चुकी हैं, जिनमें पूज्य गुरुदेव का वह निर्देश पूरा होता दिखाई पड़ रहा है।

अनेकों राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रमों की अध्यक्षता करने के अतिरिक्त देव संस्कृति विश्वविद्यालय की यह विशिष्टता रही है कि वह निरंतर क्रम में अंतरराष्ट्रीय स्तर की शख्सियतों को विश्वविद्यालय परिसर में आमंत्रित करता रहता है। इनमें से अनेकों ऐसे हैं, जो स्वतः ही विश्वविद्यालय की ओर आकर्षित होकर खिंचे चले आते हैं।

ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण अतिथि श्री दीपक मित्तल जी जो अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठान सोनालिका ट्रैक्टर्स के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं—उन्होंने विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय का भ्रमण संपन्न किया। इस अवसर पर उन्होंने देव संस्कृति विश्वविद्यालय को भारतीय संस्कृति की अद्भुत धरोहर घोषित किया।

ऐसे ही एक और अतिथि पद्मश्री कनुभाई टेलर, जो कि एक प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं—वे भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय पधारे। श्री टेलर ने वर्षों पूर्व परमपूज्य गुरुदेव से दीक्षा ग्रहण की थी और उन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए एक अंतरराष्ट्रीय स्तर का शैक्षणिक प्रतिष्ठान स्थापित किया, जहाँ से अब तक 15,000 से ज्यादा विद्यार्थी अध्ययन करके एवं उपाधि प्राप्त करके निकल चुके हैं। देव संस्कृति विश्वविद्यालय में भ्रमण करते समय उन्होंने स्वयं को अत्यंत ही गौरवान्वित महसूस किया।

ऐसे ही एक और अतिथि श्री अजेंद्र अजय जी, जो कि बद्री-केदार धामों की समिति के अध्यक्ष हैं—उनका आगमन देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में हुआ। प्रतिकुलपति जी के साथ भेंट में उन्होंने विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक विषयों पर परिचर्चा की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की यह एक गौरवशाली परंपरा रही है कि यहाँ विश्वस्तरीय कार्यक्रमों के संपन्न होने के अतिरिक्त यहाँ के विद्यार्थी एवं शिक्षक भी सदा प्रतिष्ठित कीर्तिमानों को अर्जित करते रहे हैं। विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के समन्वयक डॉ० संतोष कुमार विश्वकर्मा को उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय के षष्ठ दीक्षांत समारोह के अंतर्गत विश्वविद्यालय स्वर्णपदक एवं कुलाधिपति स्वर्णपदक प्राप्त हुआ। समस्त विश्वविद्यालय परिवार ने इस उपलब्धि पर अपना हर्ष व्यक्त किया।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय की छात्रा शांभवी यादव ने युवा महोत्सव में राज्यस्तर पर स्वर्णपदक को प्राप्त कर विश्वविद्यालय को गौरवान्वित किया। श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी ने इसे एक हर्ष से भर देने वाला समाचार घोषित किया। ❑

भगवान बुद्ध रात्रि में प्रवचन कर रहे थे। प्रवचन सुनने के लिए अग्रिम पंक्ति में बैठा हुआ व्यक्ति बार-बार नींद के झोंके ले रहा था। ऊँघते हुए उस व्यक्ति पर बुद्ध की दृष्टि पड़ी। धीमे स्वर में उस व्यक्ति से बुद्ध ने पूछा—"वत्स! सो रहे हो?" हड़बड़ाते व स्वयं को सँभालते उसने उत्तर दिया—"नहीं भगवन्।" प्रवचन पूर्ववत् चालू हो गया और उक्त व्यक्ति कुछ ही समय में पूर्व की ही भाँति ऊँघने लगा। भगवान बुद्ध ने ठीक इसी प्रकार तीन-चार बार उसे जगाया, परंतु वह शयन की पुनरावृत्ति करता 'नहीं भगवन्' कहता और पुनः सो जाता। उसकी उसी परिचित अवस्था को पुनः देखकर तथागत ने अंतिम बार उस व्यक्ति से पूछा—"वत्स! जीवित हो?" सुषुप्ति की अवस्था में उसने 'नहीं भगवन्' का ही उत्तर दिया। यह उत्तर सुनकर आरंभ से ही इस घटनाक्रम के साक्षी समस्त श्रोताओं में हँसी की लहर दौड़ गई। भगवान बुद्ध स्वयं भी मुस्कराए। हँसी की इस लहर ने अब उस व्यक्ति को झकझोरकर जगा दिया। कुछ ही समय में सभा में पूर्ववत् सन्नाटा छाया। बुद्ध निकट ही बैठे उस व्यक्ति को संबोधित कर गंभीर होकर बोले—"वत्स! निद्रा में तुमसे सही उत्तर निकल गया। जो निद्रा में है, वह मृतक समान है।" बुद्ध के इस बोधवाक्य ने वहाँ उपस्थित अनेकों में जागृति का संचार किया। सभी अनुगृहीत हो वहाँ से विदा हुए।

मानवता के स्वर्णिम भविष्य का पथ

वेदों में, पुराणों में, श्रुतियों-स्मृतियों में, उपनिषदों-धर्मशास्त्रों में एक चिंतन सार्वभौम रूप में विद्यमान मिलता है कि हर आध्यात्मिक ग्रंथ मनुष्य को इस सृष्टि में ईश्वर का, परमात्मा का वरिष्ठतम प्रतिनिधि वोषित करता है। हर आस्था के मार्ग में यह सिद्धांत कहीं गहरे में सन्निहित है कि मनुष्य, परमात्मा के इस सुरम्य उद्यान में उनके एक विशिष्ट प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित है। शब्द अलग हो सकते हैं, भावाभिव्यक्ति के माध्यम भिन्न हो सकते हैं, पर सिद्धांत अविच्छिन्न रूप से एक ही है कि इस संसार में जो स्थान, जो ताकत, जो हैसियत और जो क्षमताएँ—मनुष्य को प्राप्त हैं वो अन्य प्राणियों को बिलकुल भी नसीब नहीं हैं।

अनेकों प्रमाण भी इस सिद्धांत के पक्ष में मिल ही जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से इनसान सर्वोत्कृष्ट शरीर, क्रेनियल केविटी, चिंतन-मनन, भावनाओं की क्षमता से लेकर आविष्कार-अनुसंधान-अन्वेषण की प्रतिभा का धनी है। आस्था की दृष्टि से श्रद्धा-निष्ठा-समर्पण जैसे गुणों से लेकर ज्ञान, विज्ञान, योग, तप, संगीत, साहित्य जैसी संभावनाएँ इनसान के पास ही उपलब्ध हैं। समाधि, निर्वाण एवं कैवल्य भी मनुष्य ही प्राप्त करता दिखाई पड़ता है।

कहने का सार इतना मात्र है कि जो संभावनाएँ मनुष्य के पास हैं—वे अन्य प्राणियों को उपलब्ध नहीं हैं, ऐसा विश्वास के साथ कहा जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में यदि आज के इनसान का जीवन हम लोग देखें तो प्रश्न उठता है कि ईश्वर के वरिष्ठतम राजकुमार का जीवन जिस आनंद, उल्लास, प्रसन्नता से सिक्त होना चाहिए था, वह इनसान क्यों समस्याओं से इतना घिरा हुआ, हैरान, परेशान, दुःखी, चिंतित दिखाई पड़ता है।

यह जिज्ञासा उठनी स्वाभाविक है कि जिस राजकुमार का जीवन शांति से, प्रेम से भरा-पूरा होना चाहिए था, उसके जीवन में समस्याओं व परेशानियों के इतने अंबार क्यों लगे हुए नजर आते हैं? आज यदि मनुष्य के जीवन का मूल्यांकन करें तो यह देखकर दुःखद आश्चर्य होता है कि इनसान का शरीर जीर्ण-शीर्ण हो चला है।

बीमारियाँ—व्याधियों ने प्रचुरता से मनुष्य के शरीर पर हमला बोल दिया है। मनुष्य रोटी तो दो ही खा पाता है, परंतु गोलियाँ उसे बीस खानी पड़ती हैं। वर्तमान समय में तो सरदी, जुकाम, खाँसी भी इतना भयावह रूप ले बैठते हैं कि कब मनुष्य मृत्यु के आगोश में समा जाए कहा नहीं जा सकता है। इसके साथ एक और भी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रम है वो यह कि जिनको उनके शरीर से कष्ट नहीं मिला तो वे मन में पर्याप्त उलझनें लेकर के बैठे हैं।

वर्तमान समय में तनाव एवं दुश्चिता का प्रकोप मनुष्य के ऊपर इस कदर छाया हुआ है कि दसियों गोलियाँ खाए बिना व्यक्ति ढंग से सो भी नहीं पाता। लोगों के चेहरे से हँसी, मुस्कराहट विदा से हो चले हैं। परिवारों में कलह का वातावरण है। समाज विघटन के हाथों चढ़ा हुआ है। परिणाम यह हुआ है कि जीवन एक बोझ में बदल गया है। जिस मनुष्य के जीवन को शास्त्र देवदुर्लभ कहकर के पुकारते हैं—उसकी कीमत मात्र इतनी हो गई है कि परीक्षाओं में अंक कम पाना, घर में लड़ाई-झगड़े का होना, ऐसी घटनाएँ भी मनुष्य के जीवन को आत्महत्या के दुर्भाग्यपूर्ण अंत की ओर धकेल देती हैं।

जब चहुँओर फैली इस वास्तविकता से हम रूबरू होते हैं तो प्रश्न उठता है कि क्या जीवन इसी बोझ का नाम है और यदि यही इस जीवन का सार है तो इसके लिए देवता, ऋषि-मुनि तड़पते क्यों दिखाई पड़ते हैं? इस मनुष्य योनि के मूल-तत्त्व की प्रशंसा में शास्त्रों में पन्नों के ढेर लगे दिखाई पड़ते हैं तो प्रश्न उठता है कि गलती उनसे हुई या हम कर रहे हैं।

यदि इस प्रश्न का उत्तर हम प्राप्त करना चाहें तो हमें थोड़ा आराम से चिंतन करने की आवश्यकता है। यह जानने के लिए कि हमारा जीवन सुख व शांति के स्थान पर अशांति व उद्विग्नता का डेरा क्यों व कैसे बन गया है—हमें पहले अपने आपसे यह पूछने की आवश्यकता है कि क्या हम जीवन में सुख-शांति के पीछे दौड़ते हैं या अशांति के पीछे?

ध्यान से यदि हम देखेंगे तो अनुभव कर सकेंगे कि हमारी दौड़ है तो अशांति के ही पीछे। आज जीवन में सुख की प्राप्ति का मूल्यांकन लोग सफलता से करते हैं और सफलता का मूल्यांकन प्रतिद्वंद्विता से। मात्र घर बनने तक जीवन की दौड़ समाप्त नहीं होती, वह घर औरों से बड़ा एवं सुंदर भी होना चाहिए। ऐसे में हमारे हिस्से अशांति के अतिरिक्त क्या आने वाला है? इसके साथ ही हमें यह भी सोचने की जरूरत है कि यदि यह मिल भी गया तो क्या यह हमारी वास्तविक संपत्ति है? हमारी असली संपत्ति तो वो है, जो हम भगवान के पास से लेकर के आए थे। इसकी एक-एक चीज बेशकीमती है।

इनसान टीवी को, मोबाइल फोन को कीमती मानता है, पर यदि उस फोन को देखने वाली आँखें चली जाएँ तो? आँखें यदि कुछ पलों के लिए भी न देख पाएँ तो सारी कीमत व्यक्ति पलभर में समझ जाता है। दुर्भाग्य यह है कि इस शरीर का उपयोग और उपभोग इतनी नासमझी के साथ इनसान करता है कि वह यह भूल ही जाता है कि इसका परिणाम क्या निकलने वाला है। जो मन करे, वो खा लेना, जैसा मन करे, वैसा जी लेना—ये ही शरीर की दुर्दशा के कारण हैं। इस शरीर की जब बाद में दुर्दशा होती है, तब व्यक्ति समझ पाता है कि इस शरीर का तो एक-एक श्वास कीमती था। इसकी कीमत तब व्यक्ति समझ पाता है, जब हमारा अंतिम श्वास निकलने को होता है।

उस समय आदमी रोता भी है और अज्ञात शक्तियों से प्रार्थना भी करता है कि काश! कुछ और दिनों की जिंदगी मिल जाए, पर ऐसा होता कहाँ है? उस समय व्यक्ति एक-एक श्वास के लिए लाखों-करोड़ों रुपये लगाने को तैयार होता है। चिंतन करने वाली बात यह है कि इनसान जीवन की कीमत व्यर्थ व निरर्थक वस्तुओं में ढूँढ़ता है, पर उनको भूल जाता है, जिनके कारण इस शरीर का वास्तविक मूल्य एवं महत्त्व है। यह इनसान भूल जाता है कि हमारी वास्तविक कीमत निर्धारित किस आधार पर होती है। न तो व्यक्ति प्राण-ऊर्जा को बढ़ाने का प्रयत्न करता है और न जीवनीशक्ति को बढ़ाने का।

एक हमारी आंतरिक संपदा है, तो दूसरी बाह्य संपत्ति। व्यक्ति यदि प्राणवान होता है, तेजस्वी होता है, मनस्वी होता है, जीवट वाला होता है, आत्मबल वाला होता है तो आसमानों को हिला देने की सामर्थ्य उसके भीतर आ जाती है। तूफानों के रुख को बदल देने की ताकत उसके पास आ जाती है। ऐसे व्यक्तित्व के पास फिर ऊर्जा होती है, उसकी आँखों में तेज होता है, वाणी में ओज होता है और चिंतन में मनस् होता है।

ऐसे व्यक्तित्व ही मानवीय जीवन के रूप में मिले सौभाग्य के साथ न्याय करके जाते हैं। शरीर की शक्ति का आधार अन्न है और व्यक्ति संयम, समझदारी से भोजन करने के स्थान पर जो भी मन करे, वो खाता है। मन की शक्ति ज्ञान से आती है और व्यक्ति उसे दुर्भावों, दुर्विचारों एवं दुश्चिंतन से भरता दिखाई पड़ता है। ऐसे में यदि परिणाम बँटे-बिखरे मन एवं थके-बीमार तन के रूप में निकलकर के आता है तो फिर आश्चर्य किस बात का? सच यह है कि बीमारियाँ बाहर से नहीं आतीं, बल्कि वे मनुष्य की विकृत जीवनशैली एवं चिंतनशैली का परिणाम हैं।

अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धीन। *—ऋग्वेद (5/51)*

अर्थात जिसकी बुद्धि पवित्र होती है, उसके द्वारा किए गए मनोरथ कभी व्यर्थ नहीं जाते हैं।

यह एक सौभाग्य का ही विषय है कि परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी ने वर्षों पहले इस उलझन को अनुभव कर लिया था और इसीलिए मनुष्यता को एक महत्त्वपूर्ण सोच उन्होंने प्रदान की, जिसका नाम 'स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन और सभ्य समाज' का चिंतन है। इस अकेले सूत्र के अंदर मानवता के स्वर्णिम भविष्य का मानचित्र सुरक्षित रखा हुआ है।

यदि शरीर को संयमित, अनुशासित रखते हुए शरीर को स्वस्थ रखा जा सकेगा, उपासना, साधना, आराधना का अनुशीलन करते हुए, चिंतन-मनन को साक्षी बनाते हुए मन को स्वच्छ रखा जा सकेगा और लोक-कल्याण, सेवा इत्यादि को आधार बनाते हुए समाज को सभ्य रखा जा सकेगा तो निश्चित रूप से मानवता के सुनहले सौभाग्य का पथ हम प्रशस्त कर सकेंगे। इसी सूत्र-संदेश को जन-जन तक पहुँचाने की माँग करता हुआ वर्तमान समय आया है। ❑

निष्कलंक प्रज्ञावतार

अध्यात्म मार्ग पर जो चलते, वे सीमाबद्ध नहीं रहते,
वसुधा सारी अपनी होती, वह असीम बनकर रहते,

बुद्ध-महात्मा गांधी ने, अध्यात्म मार्ग अपनाया था,
वसुधैव कुटुम्बकम् भावभरा, अपना अपनत्व बढ़ाया था,
दायित्वों को छोड़ कभी भी, नहीं पलायन वे करते।
वसुधा सारी अपनी होती, वह असीम बनकर रहते॥

कर्त्तव्य निभाना पड़ता है, रहकर पारिवारिक जीवन में,
सुविधाएँ सारी जीवन की, मिलतीं सामाजिक जीवन में,
मनुष्य एक सामाजिक प्राणी, हैं फर्ज चुकते रहते।
वसुधा सारी अपनी होती, वह असीम बनकर रहते॥

जनमानस के परिष्कार हित, विचार क्रांति अभियान चला,
कुप्रथाओं को हमें मिटाना, दूर करें जो सड़ा-गला,
अध्यात्म मार्ग पर चलने वाले, आदर्शों में जीते रहते।
वसुधा सारी अपनी होती, वह असीम बनकर रहते॥

पुरुषार्थ अपरिमित करना है, मिलकर बढ़ते रहना है,
प्रज्ञा युग आने वाला है, संशय नहीं कुछ करना है,
युग को नवजीवन देने को, अवतार सदा आते रहते।
वसुधा सारी अपनी होती, वह असीम बनकर रहते॥

निष्कलंक प्रज्ञावतार फिर से, धरती पर शुचि आया है,
विचार क्रांति का रूप अनोखा, उसने निज दिखलाया है,
समस्याएँ जैसी होती हैं, वैसा ही रूप गढ़ते रहते।
वसुधा सारी अपनी होती, वह असीम बनकर रहते॥

—विष्णु शर्मा 'कुमार'

डॉ. चिन्मय पण्ड्या (प्रतिकुलपति–देव संस्कृति विश्वविद्यालय) द्वारा
भारतीय संस्कृति के सूत्र प्रवासी भारतीयों तक पहुँचाने के लिए यूरोप का सघन प्रवास

अखण्ड ज्योति

(मासिक)

R.N.I. No. 2162/52

प्र.ति. 01- 04 - 2022

Regd. N0. Mathura-025/2021-2023

Licensed to Post without Prepayment

N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

प्रज्ञेश्वर महादेव–देव संस्कृति विश्वविद्यालय में महाशिवरात्रि पर्व पर श्रद्धेयद्वय द्वारा
महाकाल का अभिषेक एवं विश्वशांति की प्रार्थना

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूर भाष–0565-2403940, 2402574 2412272, 2412273 मो बा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org